श्री रामकृष्ण-विवेकानन्द आदर्श भारत की एकमात्र हिन्दी मासिकी

विवेक ज्योति

वर्ष—८ दिसम्बर—१९८९ अंक—९

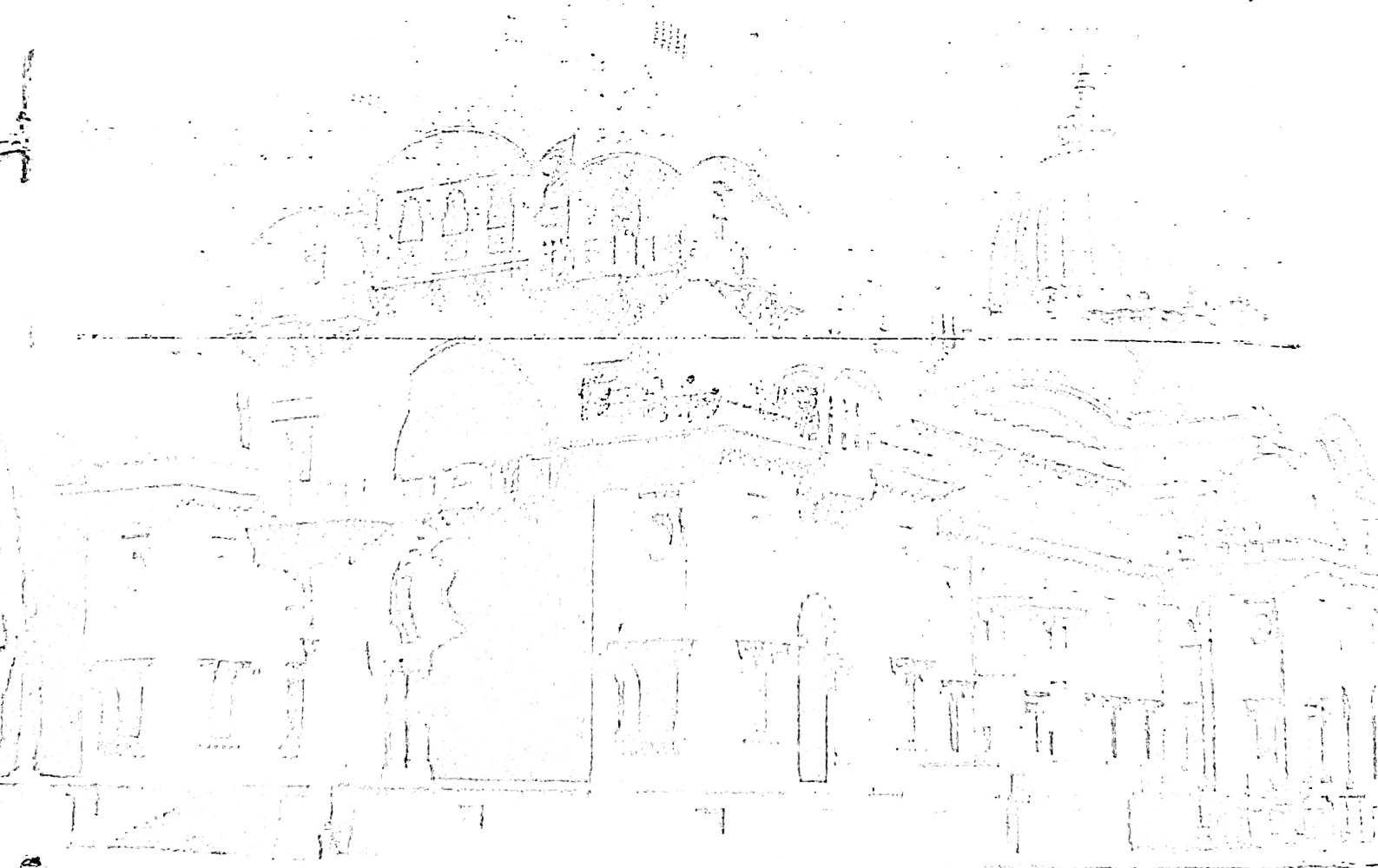

विवेक शिखा के आजीवन सदस्य

४१. श्री नीरज गुप्ता—रायपुर (मध्य प्रदेश)
४२. डॉ० गीता देवी—४४, टैगोर टाउन, इलाहाबाद
४३. डॉ० शैल पाण्डेय—४१, टैगोर टाउन, इलाहाबाद
४४. श्री रामानन्द गुप्ता—बिसवा (उत्तर प्रदेश)
४५. श्री निशीथ कुमार बोस—तपन प्रिंटिंग प्रेस, पटना
४६. श्री नरेश कुमार कश्यप —नागपुर (महाराष्ट्र)
४७. श्रीरामकृष्ण विवेकानन्द समिति—अमराबती ,,
४८. डॉ० दर्शन लाल—कुराली (पंजाब)
४९. श्री गोविन्द ढनढनिया— कलकत्ता (प० बंगाल)
५०. श्री निखिल शिवहरे – दमोह (म० प्र०)
५१. श्री बी० भी० नायोरी— कलकत्ता (पं० बंगाल)
५२. श्री पवन कुमार वर्मा – समस्तीपुर (बिहार)
५३. श्री चिनुभाई भलाभाई पटेल —खेड़ा (गुजरात)
५४. श्री एस० सी० डाबरीवाला —कलकत्ता (प० बं०)
५५. श्री गोपाल कृष्ण दत्ता जयपुर (राजस्थान)
५६. श्री बृजेश चन्द्र बाजपेयी – जयपुर (राजस्थान)
५७. श्री बनवारी लाल सर्राफ—कलकत्ता (प० बं०)
५८. श्रीमती गौरी चट्टोपाध्यायएलेन बंज, इलाहाबाद
५९. श्री वसन्त लाल जैन — कैथल (हरियाणा)
६०. डॉ० श्यामसुन्दर बोस — दूधपुरा बाजार (समस्तीपुर)
६१. श्री केशव दत्त वशिष्ठ —हिसार (हरियाणा)
६२. श्री के० सी० बागरी —कलकत्ता (प० बंगाल)
६३. मधु खेतान—कलकत्ता (प० बंगाल)
६४. प्रधान अध्यापिका—डोरांडा गर्ल्स हाई स्कूल, राँची
६५. रामकृष्ण मिशन स्टूडेन्ट्स होम— मद्रास
६६. श्री विनयशंकर सिन्हा—दाऊदपुर, छपरा
६७. रामकृष्ण मिशन सेवाश्रम—इलाहाबाद
६८. श्रीमती मीरा मित्रा—इलाहाबाद
६९. स्वामी शान्ति नाथानन्द—रामकृष्ण मठ,इलाहाबाद
७०. श्रीमती उषा श्रीकांत रेगे—दादर, बम्बई
७१. कुमारी इन्दु जोशी उत्तरकाशी (उ० प्र०)
७२. श्री के० अनूप —रोइंग (अरुणाचल प्रदेश)
७३. गंगा सिंह महाविद्यालय—छपरा (बिहार)
७४. डॉ० उषा वर्मा छपरा (बिहार)
७५. श्री विजय कु०प्रभाकर राव शंखपाल - (महाराष्ट्र)
७६. श्री विजय कुमार सिंह, झुमरीतिलैया (बिहार)
७७. श्री रघुनन्दन सेठी, कोटा, (राजस्थान)
७८. श्री भृगुनाथ प्रधान, जमशेदपुर (बिहार)
७९. डॉ० अमरेन्द्र कुमार सिंह, छपरा (बिहार)

इस अंक में

१. श्री रामकृष्ण ने कहा है		१
२. दो भजन	(सारदातनय)	२
३. पूजनीय भरत महाराज		३
४. दीपशिखा— माँ सारदा	(सम्पादकीय सम्बोधन)	५
५. रामकृष्ण भाव आन्दोलन में श्री माँ सारदा की भूमिका	– स्वामी आत्मानन्द	७
६. पतित पावनी माँ सारदा	स्वामी ब्रह्मेशानन्द	१५
७. ईसा मसीह : जीवन तथा उपदेश	स्वामी वागीश्वरानन्द	१९
८. मनुष्य का मेरुदण्ड—चरित्र		२८
९. स्वामी अद्भुतानन्द की जीवन कथा	चन्द्रशेखर चट्टोपाध्याय	३२

—सारदानन्द

(१) अवतीर्ण हुई आदिशक्ति

(झुमुर—खेमटा)

अवतीर्ण हुई आदिशक्ति आज धराधाम में।
जयरामवाटि ग्राम में, जयरामवाटि ग्राम में ॥
अवनि-गगन बने मगन मधुर मातृनाम में।
जयरामवाटि ग्राम में, जयरामवाटि ग्राम में ॥

कृष्णसप्तमी तिथि है, मार्गशीर्ष मास।
दिव्य तेज से दमके दीन द्विज-निवास।
ब्रह्ममयी प्रकट हुई जीवमुक्ति काम में ॥

धन्य रामचन्द्र पिता, श्यामा जननी।
जगदम्बा स्वयं तुम्हारी सुता बनी।
लक्ष्मी वैकुंठ में यही हरि के वाम में ॥

कुजन सुजन जड़-चेतन सब की तू मात।
कृपामयी लुटा रही कृपा दिवस-रात।
सीस नवाए सब जग, माँ तेरे प्रणाम में ॥

(२) जय जय माँ सारदे

(भैरवी—दादरा)

जय जय माँ सारदे।
सकल-सुजन-कुजन-जननि अघदलन-विशारदे ॥

प्रकटी तू ब्रह्ममयी, हरने भवतापत्रयी।
मुझ प्रपन्न पर प्रसन्न हो सब दुख टार दे ॥

हर ले सकल वासना, चित्त को विशुद्ध बना।
विवेक-वैराग्य-ज्ञान-भक्ति से निखार दे ॥

हृदय-निहित स्व-दिव्यता, अनुभव की दे क्षमता।
सर्वनाश कर विनाश, खोल मोक्षद्वार दे ॥

शोक समाचार

पूजनीय भरत महाराज

बड़े दुख के साथ हमें सूचित करना पड़ रहा है कि रामकृष्ण मठ और मिशन के वरिष्ठतम संन्यासी स्वामी अभयानन्द जी महाराज, जिन्हें सभी आदर से भरत महाराज कहा करते थे, अपने सौ वर्ष के वय में गत १७ नवम्बर की मध्य रात्रि को १२ बजकर ७ मिनट पर कलकत्ते के रामकृष्ण मिशन, सेवा प्रतिष्ठान में महासमाधिस्थ होकर श्री रामकृष्ण के पादपद्मों में सदा के लिए मिल गये।

पूजनीय भरत महाराज का जन्म सन् १८८७ ई० में ढाका जिला (सम्प्रति बंगला देश) के मौझधारा ग्राम में हुआ था। उनके पूर्वाश्रम का नाम था श्री अतुलचन्द्र गुह।

अपने छात्र जीवन में ही अतुल में राष्ट्रीयता की प्रबल भावना भर गयी थी और वे पराधीन भारत को मुक्त करने की उदग्र लालसा से, स्वामी विवेकानन्द के आदर्श से प्रेरित गठित अनुशीलन समिति के सदस्य हो गये थे। उनका नाम क्रान्तिकारी कार्यकर्त्ता के रूप में अँग्रेज शासकों की संचिका में दर्ज हो गया था। सन् १९०९ ई० में वे अपने एक मित्र के साथ कलकत्ता आये स्वाधीनता संग्राम के सेनानियों के तत्कालीन आदर्श पुरुष श्री अरविन्द के दर्शनार्थ। किन्तु अतुल की नियति कुछ और थी। कलकत्ते में उन्हें अरविन्द के दर्शनार्थ ठहरना पड़ा रामकृष्ण मिशन, बेलुड़ मठ में। दर्शन हुआ रामकृष्ण मठ और मिशन के प्रथम अध्यक्ष स्वामी ब्रह्मानन्द का। एक ने दूसरे को देखा। एक चमत्कार घटित हो गया। विप्लवी अतुल का रूपान्तरण हुआ। स्वामी ब्रह्मानन्द की आध्यात्मिक ऊर्जा और प्राणस्पर्शी व्यक्तित्व ने अतुल को गंभीर रूप से आकृष्ट कर लिया।

अतुल के मित्र किसी आवश्यक कार्य से ढाका लौट गये। अतुल ने भी एक दिन स्वामी ब्रह्मानन्दजी से कहा—"अब ढाका लौट जाऊँगा!" उत्तर मिला—'ठीक है, किन्तु स्वामीजी की जन्मतिथि निकट ही है। मठ में आये हो तो उत्सव देखकर जाओ।' उत्सव हो जाने पर फिर अतुल ने एक दिन स्वामी ब्रह्मानन्दजी से कहा—"अब तो लौट जाऊँ।" स्नेह भरे स्वर में ब्रह्मानन्द जी ने कहा—"कुछ दिन बाद ही तो श्री रामकृष्ण की जन्म तिथि पड़ती है। वह उत्सव देख कर लौट जाना।" इस तरह दिन पर दिन बीतते रहे और अतुल फिर कभी लौट कर घर नहीं जा सके।

क्रमशः श्री रामकृष्ण के अनेक साक्षात् शिष्यों के सम्पर्क—स्नेह सम्पर्क में वे आ गये। स्वामी शिवानन्द जी ने उन्हें 'भरत' नाम से पुकारना शुरू किया। यही नाम उनके जीवन से जुड़ गया।

अतुल ने सन् १९०१ में स्वामी विवेकानन्द का अग्निगर्भित व्याख्यान ढाका में सुना था। पर बेलुड़ मठ में उनका दर्शन उन्हें नहीं हुआ। किन्तु, श्री माँ सारदा देवी से सन् १९१२ में उन्हें मन्त्र दीक्षा लेने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। १९२० ई० में स्वामी ब्रह्मानन्द जी महाराज ने उन्हें संन्यास दीक्षा दी। आरम्भिक पाँच वर्षों तक वे हिमालय के मायावती, अद्वैत आश्रम में कार्यरत रहे। फिर १९४० ई० तक तथा १९४४ से १९४६ ई० तक बेलुड़ मठ की कार्यकारिणी समिति के सदस्य के रूप में कार्यरत रहे। १९४७ ई० से जीवन के अंतिम दिनों तक पूजनीय भरत महाराज रामकृष्ण मठ और मिशन के न्यासी (ट्रस्टी) और संचालन समिति के सदस्य बने रहे।

अपने सौ वर्ष के सुदीर्घ जीवन में वे पहली बार रामकृष्ण मिशन सेवा प्रतिष्ठान अस्पताल में भर्त्ती हुए २ जून, १९८९ ई० को अस्पताल में उनके दर्शनार्थ आये अनेक भक्त, विद्वान, राजनेता, कलाकार आदि। आये प्रधान मंत्री राजीव गाँधी, बंगाल के मुख्यमंत्री ज्योति बसु, विख्यात सरोद वादक अमजद अली खाँ और भी अनेक मनीषीगण और अंत में १७ नवम्बर (१ अग्रहायण) को उसी अस्पताल में वे ब्रह्मलीन हो गये।

पूजनीय भरत महाराज ने स्वामी ब्रह्मानन्द, स्वामी शिवानन्द, स्वामी सारदानन्द, स्वामी प्रेमानन्द, स्वामी अखण्डानन्द आदि श्री रामकृष्ण के अनेक लीला सहचरों के निकट सम्पर्क में रहने का सुयोग पाया था। श्री माँ सारदा देवी की अशेष कृपा की मंदाकिनी में अवगाहन करने का उन्हें सौभाग्य मिला था। पूजनीय स्वामी ब्रह्मानन्द से पूजनीय स्वामी भूतेशानन्दजी महाराज (वर्त्तमान महाध्यक्ष) तक रामकृष्ण मठ के बारहों संघाध्यक्षों को उन्होंने देखा था और सबसे निकट सम्पर्क में वे रह चुके थे।

स्वामी विवेकानन्द के दो मंजिले मकान के जिस घर में स्वामी ब्रह्मानन्द जी रहा करते थे, गंगा के सामने के उसी घर में पूजनीय भरत महाराज का निवास था। वहाँ प्रातः काल से ही उनके दर्शनार्थ लोगों का ताँता लगा रहता। बेलुड़ मठ आते ही श्री रामकृष्ण की जीवंत प्रतिमा का दर्शन करने के बाद हर व्यक्ति की एक ही जिज्ञासा होती थी—भरत महाराज कहाँ रहते हैं? और लोग उन्हें प्रणाम कर धन्यता का बोध करते थे। श्रीमती इन्दिरा गाँधी, राजीव गाँधी और ज्योति बसु ही नहीं, भारत और भारत के बाहर के—रूस से लेकर अमेरिका तक के अनेक गण्यमान्य यात्रियों के दर्शन और आकर्षण के केन्द्र थे पूजनीय भरत महाराज। वे सब के प्रणन्य थे, सब उनके समक्ष नतमस्तक होते थे। इन पंक्तियों के लेखक को भी पूजनीम भरत महाराज के दुर्लभ दर्शन का एकाधिक बार सौभाग्य प्राप्त हुआ था। यह भी एक विचित्र संयोग ही है कि उनके अस्पताल में भर्ती होने के ठीक एक माह पूर्व २ मई, १९८९ को उनके पाद पद्मों का स्पर्श करने, उनके स्नेहिल स्पर्श से अभिभूत होने एवं उनसे बातचीत करने का पुण्य-लाभ मुझे प्राप्त हुआ था।

पूजनीय भरत महाराज अपने भौतिक शरीर में नहीं हैं। किन्तु अपने सूक्ष्म शरीर में वे हमारे मंगल के लिए सतत वर्त्तमान हैं। विवेक शिखा परिवार और अपनी ओर से उनके श्रीचरणों में में शत-शत श्रद्धायुक्त प्रणाम। हरि ॐ रामकृष्ण।

केदार नाथ लाभ

सम्पादकीय सम्बोधन

दीपशिखा—माँ सारदा

मेरे आत्मस्वरूप मित्रो,

मैंने सुना है, एक साधु जाड़े की कुछ देर रात में किसी शहर में पहुँचे। समस्या थी, वे रात कहाँ बितायें। लोगों के घर-दरवाजे बन्द हो चुके थे। अचानक उनकी दृष्टि एक दुकान पर पड़ी जहाँ श्री माँ सारदा का एक चित्र टँगा था। सोचा उन्होंने, यह श्रीरामकृष्ण के किसी भक्त की दुकान है, यहीं कुछ भिक्षा पा लेनी चाहिए। भीतर जाने पर उन्होंने देखा, वह एक मुसलमान की दुकान थी। चूल्हे बुझ चुके थे। पूछा उन्होंने दुकानदार से, यह किसकी तस्वीर है ? दुकानदार ने कहा, "यह तो मैं नहीं जानता कि यह किसकी तस्वीर है, पर इतना जरूर लगता है कि यह एक माँ की तस्वीर है। और बचपन में ही मेरी माँ मर गयी थी। माँ का प्यार मुझे नहीं मिला। मैं बदकिस्मत हूँ। लेकिन जब इस तस्वीर की ओर देखता हूँ तो लगता है, मेरी माँ ऐसी ही रही होगी। और तब मुझे बड़ी राहत मिलती है, बड़ा शुकून मिलता है। इस तस्वीर से एक माँ की मुहब्बत टपकती नजर आती है। क्या आपको भी ऐसा नहीं लगता ?" जब साधु ने उसे उस तस्वीर का परिचय दिया तो उसकी आँखों में आँसू भर आये और वह उस तस्वीर के आगे श्रद्धा से झुक गया। ऐसी कई घटनाएँ हैं।

सचमुच वह अभागा है जिसे बचपन में माँ का प्यार नहीं मिला। लेकिन उन तमाम मातृ-विहीन, मातृ-स्नेह-वंचित व्यक्तियों के लिए श्री माँ सारदा सदैव अपने स्नेहांचल की छाया प्रदान करने को प्रस्तुत हैं। उनका स्नेहामृत सब पर बरसता है। उनका स्वयं का कथन है—'हाँ, मैं सबकी माँ हूँ, कुत्ते-बिल्ली की भी। मैं जिसकी माँ नहीं हूँ, वह अभागा है।' एक अन्य अवसर पर एक बालक से उन्होंने कहा था—'मैं तुम्हारी माँ हूँ। गुरु पत्नी होने के नाते नहीं, केवल कहने के लिए नहीं, बल्कि सचमुच की माँ, बिल्कुल अपनी माँ,।' मुझे तो लगता है, हम जिस माँ की कोख से उत्पन्न हुए हैं, उससे कहीं अधिक अपनी माँ हैं—श्री माँ सारदा। मातृ-स्नेह के अभाव में जिनके जीवन में एक अंधकार गहराता रहता है, विश्व के उन तमाम व्यक्तियों के जीवन में एक अशेष स्नेह की दीपशिखा हैं—श्री माँ सारदा।

एक और बात है। श्रीरामकृष्ण ने पहले भवतारिणी का दर्शन कर लिया और तब उन्होंने विवाह किया। अर्थात् उन्होंने ईश्वर को प्राप्त कर लेने के पश्चात् संसार में प्रवेश किया। लेकिन श्री माँ सारदा का बचपन में ही, जब वे मात्र छः सात साल की बालिका थीं, तभी विवाह हो गया। और तब उन्होंने ब्रह्म साक्षात्कार किया। अर्थात् उन्होंने संसार के बंधन में बँध जाने पर भी ईश्वर को प्राप्त किया। इसका अर्थ यह हुआ कि श्रीरामकृष्ण हमारे आदर्श हैं पर श्री माँ सारदा देवी हमारे जीवन की यथार्थ हैं। श्रीरामकृष्ण हिमालय की उस ऊँचाई के समान हैं जहाँ हमारे बौने हाथ पहुँच नहीं पाते। किन्तु श्री माँ एक माँ की भाँति वहाँ खड़ी हैं जहाँ हम सांसारिकता की धूल से धूसरित होकर भी दौड़कर पहुँच सकते हैं। संसार की धूल में लिपटे हर प्राणी के लिए आशा की, आश्वस्ति की एक दीपशिखा हैं—श्री माँ सारदा।

श्रीरामकृष्ण ने अनेक प्रकार की साधनाएँ की थीं। उनकी अनेक साधनाओं का हमें परिचय है। और भी कितनी ही तरह की उन्होंने साधनाएँ की थीं जिनका हमें ज्ञान नहीं है। किन्तु श्री माँ सारदा ने कौन सी साधना

की थी, इसका हमें कोई परिचय नहीं। श्रीरामकृष्ण के जीवन में कई गुरु आये। किन्तु श्री माँ के जीवन में? कौन था उनका गुरु—हमें कुछ ज्ञात नहीं। श्रीरामकृष्ण के अतिरिक्त उनके जीवन में और कोई आया ही नहीं। लेकिन हम देखते हैं, स्वयं श्रीरामकृष्ण श्री माँ के चरणों पर अपनी जयमाला अर्पित करते हैं और उन्हें भगवती मानकर नतमस्तक होते हैं, उनके पाद पद्मों पर। क्या अर्थ है उसका? सीधा सा अर्थ यह है कि हम जागतिक प्राणियों के लिए यह आवश्यक नहीं कि अनेकानेक साधनापथों का अवलम्बन कर ही हम धर्म मार्ग में अग्रसर हो सकते हैं। नहीं, निष्ठापूर्वक किसी एक साधना और किसी एक आदर्श को, किसी एक सद्गुरु को अपनाकर भी हम ईश्वर पथ पर यात्राकर सिद्धि प्राप्त कर सकते हैं। इस अर्थ में हमारी प्रेरणा की प्रोज्वल दीपशिखा हैं—श्री माँ सारदा।

प्रायः हम अनुभव करते हैं कि सांसारिक जीवन में इतनी उलझने भरी पड़ी हैं कि धर्मजीवन की ओर बढ़ना एक दुष्कर कार्य लगता है। लेकिन हम श्री माँ के जीवन में देखते हैं कि वे दिवारात्रि श्रीठाकुर और उनके भक्तों की सेवा में नीरव-निःस्वर भाव से निरत रहती हैं। फिर पगली राधू, संसारासक्त भाइयों-भाभियों, अमजद डाकू और संथाल बहू जैसे भिन्न-भिन्न प्रकृति के लोगों के बीच वे अनासक्त आत्मसंस्थ भाव से भाँति भाँति के कार्य करती रहती है। कभी स्वयं कुदाल-फावड़े चलाकर साग बोती हैं तो कभी बिना नमक के भोजन करने पर विवश होती है। तात्पर्य यह है कि श्री माँ हमें बताना चाहती है कि संसार-सागर के ज्वार-भाटों के थपेड़े खाते हुए भी हम प्रभु-पथ के यात्री हो सकते हैं। इस घोर संसारार्णव में आकंठ डूबे हुए प्राणियों के लिए एक महत्तम जीवन की ओर प्रयाण करने के लिए एक दीपशिखा हैं—श्री माँ सारदा।

आज विश्व की नारियाँ एक चौराहे पर खड़ी हैं। आधुनिकता ने उन्हें भोगोन्मुखी बना दिया है। जो परम्परा की देहलीज पर खड़ी हैं वे पिछड़ी समझी जाती हैं। पर सत् और असत् सबकी माँ श्री सारदा आधुनिक नारी समाज के लिए भी आदर्श की दीपशिखा हैं।

ऐसी कई नारियाँ विश्व में हैं जो किसी कारण से अपनी कोख से सन्तान उत्पन्न नहीं कर पाने के कारण माँ नहीं बन सकीं। वे एक अकथनीय वेदन-व्यथा, उपेक्षा-तिरस्कार और उपालम्भ का जीवन जीने को अभिशप्त हो गयी हैं। वे मानती ही नहीं हैं कि अपनी कोख से शिशु को जन्म नहीं देने पर भी माँ कैसे बनी जाती है। ऐसी तमाम तप्त-अभिशप्त नारियों के लिए भी एक मंगलमय जीवन-शिल्प की दीपशिखा हैं—श्रीमाँ सारदा।

हम सब जानते हैं, दक्षिणेश्वर-निवास के दिनों में एक भोर के धुंधलके में श्री माँ जब गंगा-स्नान करने जा रही थीं तब घाट की सीढ़ी पर से एक घड़ियाल गंगा में कूद पड़ा था। और तब से माँ नित्य एक लालटेन लेकर गंगा स्नान करने जाया करती थीं। यह घटना अत्यन्त तात्पर्यपूर्ण और विशेष अर्थ व्यंजक है। यह संसार ही मानो एक विशाल सरिता है। इसके तट पर विषय-वासनाओं के घड़ियाल मुँह बाये पड़े हैं। हमें यदि इस सरिता में उतरना है और घड़ियाल से बचना है तो हमारे हाथ में एक लालटेन चाहिए—एक ज्ञान का, विमल विवेक का, ब्रह्मभाव का लालटेन। और हमारे लिए, हम सब के लिए, वह लालटेन, वह दीप शिखा हैं श्री माँ सारदा।

मैं इन ब्रह्ममयी, जगज्जननी, ज्ञानदा-वरदा श्री माँ सारदा से आन्तरिक प्रार्थना करता हूँ कि वे हम सबको अपने स्नेहांचल की शाश्वत छाँह देकर हमारे जीवन को धन्यता प्रदान करें। जय श्रीमाँ सारदा।

रामकृष्ण-भाव-आन्दोलन में श्री माँ सारदा की भूमिका

—स्वामी आत्मानन्द

(रामकृष्ण योगोद्यान मठ, काँकुड़गाछी द्वारा आयोजित श्री रामकृष्ण देव के १५०वें अविर्भाव महोत्सव तथा रामकृष्ण संघ के शताब्दी उत्सव के अवसर पर ब्रह्मलीन प० स्वामी आत्मानन्द जी महाराज का दिया गया व्याख्यान। —सं०)

अभी हम सभी ने श्री अमिय कुमार बन्द्योपाध्याय का बड़ा भावपूर्ण भाषण सुना है। उन्होंने माँ के जीवन की दो घटनाओं का उल्लेख किया है। मैं भी इन दोनों घटनाओं को अत्यन्त महत्वपूर्ण मानता हूँ। पहली घटना वह है, जहाँ दक्षिणेश्वर में श्रीराकृष्ण षोड़शी के रूप में श्री माँ की पूजा करते हैं। तब माँ समाधिस्थ हो जाती हैं और पूजक श्रीरामकृष्ण भी। तदनन्तर वे अपनी साधना से लब्ध समस्त उपलब्धि, जप की माला के साथ, माँ के चरणों में सौंपकर उन्हें प्रणाम करते हैं। उस समय, मैं ऐसा मानता हूँ, माँ वरदा हो जाती है और श्रीरामकृष्ण को उनकी जगत्-उद्धार की कामना की सिद्धि के लिए आशीर्वाद प्रदान करती है। हमारी ऐसी मान्यता है कि भाव के क्षेत्र में रामकृष्ण संघ का जो सूत्रपात श्रीरामकृष्ण के मनोजगत् में हुआ होगा, वह मानो यहीं से रूप लेना शुरू करता है और माँ सारदा उसके रूपायित होने का वरदान देती हैं। यह भाव-जगत् की घटना है। दूसरी घटना भौतिक जगत् की है। एक रात्रि जब श्रीरामकृष्ण के एक शिष्य ने उनके द्वारा निर्धारित संख्या से अधिक रोटियाँ खा ली तो उन्होंने उसे फटकारते हुए कहा "यदि इतनी रोटियाँ खाएगा तो साधना किस प्रकार करेगा?" इस पर शिष्य बोला, "मैं क्या करूँ, माँ ने जबरदस्ती मुझे खिला दी!" तब श्रीरामकृष्ण ने माँ के पास जाकर शिकायत के स्वर में कहा था, "तुमने उसे अधिक रोटी खिलाकर अच्छा नहीं किया, उससे उसकी साधना में विघ्न उपस्थित होगा।" माँ इसके उत्तर में बोली थी, "वह तुम्हें सोचने की आवश्यकता नहीं, उसका भार मैं लेती हूँ।" इन वचनों के माध्यम से माँ स्वयं अप्रत्यक्ष रूप से मानो रामकृष्ण संघ का भार ग्रहण कर रही हैं। मेरे मतानुसार ये दो घटनाएँ ऐसी हैं जो संकेत करती हैं कि रामकृष्ण भाव-आन्दोलन माँ के स्नेह से पालित और पुष्ट हुआ है। जब तक वे भौतिक शरीर में विद्यमान थीं, ये सतत् उसका संरक्षण करती रहीं, और अब भले ही उन्होंने अपने भौतिक शरीर का त्याग कर दिया है तथापि सूक्ष्म देह में रहते हुए वे पहले की ही भाँति उसका परिचालन और संरक्षण करती आ रही हैं।

प्रश्न उठता है कि यह रामकृष्ण भाव-आन्दोलन क्या है, जिसका पोषण और संरक्षण माँ ने किया? रामकृष्ण-भाव की विशेषता क्या है, जिसके आधार पर रामकृष्ण संघ खड़ा है? उत्तर में हम कह सकते हैं कि यह रामकृष्ण-भाव चार स्तम्भों पर खड़ा है। पहला स्तम्भ है—ईश्वर की अपरोक्ष अनुभूति। श्रीरामकृष्ण कहते थे, "कसम खाकर कहता हूँ मैं ईश्वर छोड़ और कुछ नहीं जानता।" उनके लिए ईश्वर के बिना सब कुछ बेमानी था। दूसरा स्तम्भ है—उस ईश्वर को सबके भीतर देखना। एक बार श्रीरामकृष्ण आँखें बन्द करके ईश्वर का ध्यान कर रहे थे। सहसा बोल उठे, "क्या आँखें बन्द करने से ही ईश्वर दिखाई देता है, आँखें खोलने पर नहीं?" और ऐसा कह उन्होंने आँखें खोल दीं। बोले, "मैंने आँखें खोलकर देखा जो ईश्वर आँखें बन्द करने पर दिखाई दे रहा था,

वही आँखें खोलने पर भी दिख रहा है। जो भीतर दिखाई दे रहा था, वही बाहर दिख रहा है—सबमें और सब जगह उसी की सत्ता दिखाई दे रही है।" यह ईश्वर की व्याप्ति का वर्णन है। जिसकी उन्होंने आँखें बन्द कर अपरोक्ष अनुभूति की थी, वही आँखें खोलने पर सर्वत्र दिखाई दे रहा है। इसी के आधार पर उन्होंने 'शिवज्ञान' से जीव सेवा का मंत्र प्रदान किया। तीसरा स्तम्भ है—किसी प्रकार जाति या धर्म के आधार पर भेदभाव नहीं करना। श्रीरामकृष्ण ने कहा था, "भक्तों की कोई जाति नहीं होती। अर्थात् भक्तों की एक ही जाति होती है और वह है 'भक्त'। चौथा स्तम्भ है—उन्होंने कभी पापी से घृणा नहीं की। घृणा का पात्र तो पाप है, पापी नहीं। श्री माँ ने अपने जीवन के माध्यम से रामकृष्ण-भाव-आन्दोलन के इन चारों स्तम्भों को और भी परिपुष्ट किया। हम यहाँ पर यही बतलाने का प्रयास करेंगे कि उनका जीवन रामकृष्ण-भाव की व्याख्या स्वरूप था।

हम जानते हैं कि बुद्धगया में साधुओं के निवास-भोजन आदि की उत्तम व्यवस्था देख उन्होंने किस प्रकार रो-रोकर श्री रामकृष्ण से प्रार्थना की थी—"ठाकुर, तुम लड़कों के लिए कुछ ऐसा स्थान बना दो, जैसा यहाँ बना है। तुम्हारे लड़के दर-दर भटककर भिक्षा माँगते रहें यह ठीक नहीं है। आज हम जिस सुख-सुविधा का भोग कर रहे हैं, वह माँ की उसी प्रार्थना का ही तो फल है।

फिर, एक दूसरी दृष्टि से देखें तो माँ कौन हैं:—साक्षात् ठाकुर ही। शरीर दोनों के अवश्य भिन्न हैं, पर भाव की दृष्टि से दोनों में कहीं पर कोई पार्थक्य नहीं है। अतएव रामकृष्ण-भाव जो है, वही सारदा-भी है। श्रीरामकृष्ण माँ का परिचय देते हुए कहते हैं, "वह मेरी शक्ति है।" शक्ति और शक्तिमान तो अलग नहीं होते। श्रीरामकृष्ण के शब्दों में शक्ति और शक्तिमान अग्नि और उसकी दाहिकाशक्ति के समान अभिन्न [illegible]। तो जब श्रीरामकृष्ण कहते हैं कि वह मेरी शक्ति है, इसका अर्थ यह है कि सारदा श्रीरामकृष्ण से अलग नहीं है—वही हैं। फिर माँ ने भी तो कुछ ऐसा ही इंगित किया था। स्वामी विरजानन्दजी, रामकृष्ण संघ के छठे महाध्यक्ष, उनके मंत्र-शिष्य थे। एक बार वे माँ के दर्शन करने 'मायेर बाड़ी' (उद्बोधन) गये। माँ को प्रणाम किया। माँ उस समय तरकारी काट रही थीं। विरजानन्द जी पीछे की ओर खड़े थे, माँ की पीठ उनकी ओर थी। वे अनुयोग के स्वर में कहने लगे, "माँ, जीवन में एक दुःख बना रह गया।"

"तुम्हें दुःख किस बात का रह गया, बेटा?" माँ का स्नेह भरा प्रश्न था।

"माँ, चाहता तो ठाकुर के दर्शन कर सकता था यह दुःख रह गया।"

और सचमुच यदि विरजानन्दजी चाहते तो ठाकुर के दर्शन कर सकते थे, क्योंकि सन् १८८६ में जब श्री रामकृष्ण महासमाधि में लीन हुए, तब उनकी वय १३ वर्ष की थी। अतः उनके मन में यह दुःख बना हुआ था कि वे सम्भव होते हुए भी ठाकुर के दर्शन न कर पाये। माँ ने उनके कथन के उत्तर में कहा, "क्यों बेटा, तुम उनको देख तो रहे हो, फिर दुःख कैसा? विरजानन्दजी माँ का आशय पकड़ न पाये, पुनः कहा "नहीं माँ, उनको न देख पाने का दुःख बना ही रह गया।" माँ ने फिर से वही बात कही, पर इस बार भी वे माँ का मन्तव्य नहीं समझ सके और तीसरी बार उसी बात को दुहराया। तब माँ ने उनकी ओर अपना मुँह घुमाया और उनकी आँखों में आँखें डालकर बोली, "उनको देख तो रहे हो बेटा।" तत्क्षण विरजानन्दजी की शिराओं में बिजली कौंध गयी। माँ ने अपनी बात समझा दी! माँ साक्षात् ठाकुर ही हैं यह अपने अन्तरंग का परिचय करा दिया।

श्री रामकृष्ण ने अपने भानजे और सेवक हृदयराम को सावधान कर दिया था कि वह अपनी मामी के साथ सज्जनता से पेश आए। हृदयराम अपनी मामी से कभी कभी दुर्व्यवहार कर बैठता। श्री रामकृष्ण

ने कहा था, देख रे हृदू तू मुझे चाहे जो कह सकता है, तेरी रक्षा हो सकती है. पर यदि तूने उसे कुछ कहा, और उसके भीतर जो है वह यदि एक बार फन उठाकर फुफकारे, तो ब्रह्मा-विष्णु-महेश किसी मे ताकत नहीं जो तेरी रक्षा कर सके।" यह श्री रामकृष्ण द्वारा अपनी शक्ति का परिचय कराना है। और माँ ने, अवगुण्ठन में ढकी माँ ने, अपना परिचय किस प्रकार दिया था?

एक साधु उन्हें प्रणाम करने 'मायेर बाड़ी' आये। माँ भीतर व्यस्त थीं। वे तो ऊपरी दृष्टि से सामान्या थीं। मिलने आई हुयी महिलाओं के साथ भीतर में लौकिक चर्चा कर रही थीं। साधु को कुछ देर बैठना पड़ा। माँ जब बाहर आकर दर्शन देने तैयार होकर बैठीं तो साधु को बुलाया गया। वे देखते हैं कि माँ का सारा शरीर सिर से पैर तक ढका है, केवल दो चरण दिखाई दे रहे हैं। साधु खीजे हुए बैठे थे। भीतर चलनेवाली सांसारिक चर्चा भी उनके कानों में गयी थीं। उनसे रहा न गया, बोल ही पड़े, "देखता हूँ आप बहुत माया में लिपटी हैं।', माँ ने धीमे स्वर में उत्तर दिया, "क्या करूँ बेटे! मैं माया जो हूँ।" पता नहीं साधु यह बात पकड़ पाये या नहीं, पर इसे पकड़ा सेविका ने। कितने सहज भाव से यह माँ के द्वारा अपने स्वरूप का उद्घाटन था। वे माया थीं, आदिशक्ति थीं। "श्रीरामचरित मानस" में साक्षात जगन्नियन्ता ईश्वर मनु और शतरूपा से अपनी शक्ति का परिचय कराते हुए कहते हैं—

आदिशक्ति जेहि जग उपजाया।
सोउ अवतरिहि मोरि यह माया॥१।१५१।४

यह आदिशक्ति है, मेरी माया है जिसने जगत् को उत्पन्न किया है, यह भी (मेरे साथ) अवतार लेगी। सो वे, त्रेतायुग में राम और सीता के रूप से अवतरित होते हैं और हमारे अपने युग में रामकृष्ण और सारदा के रूप में। श्री रामकृष्ण ने अपने जीवन में कई बार कहा भी तो था, "जो राम, जो कृष्ण, वही इस बार एक ही आधार में रामकृष्ण।

पर क्या नरेन्द्र नाथ इस कथन पर विश्वास कर सके थे? उन्हें विश्वास करना पड़ा था। उन्होंने श्री रामकृष्ण की परीक्षा ली थी और उनकी परीक्षा की कसौटी पर श्री रामकृष्ण खरे उतरे। अविश्वास करने की कोई गुंजाइश ही नहीं रख छोड़ी थी। वह १३ अगस्त १८८६ की घोर अंधेरी रात थी। श्री रामकृष्ण गले के कैंसर से पीड़ित थे। काशीपुर उद्यान भवन में रह रहे थे। आज वहां जहां मन्दिर है, उसी कमरे में रहते थे। नरेन्द्र नाथ आदि भक्तगण उनकी पीड़ा से व्यथित हो चुपचाप बैठे। कुछ कर तो नहीं सकते थे। रोग असाध्य हो गया था। चिकित्सकों ने आशा छोड़ दी थी। कई दिनों से श्री रामकृष्ण बोल नहीं पाये थे। कुछ बताना होता तो कोयले से लिखते या संकेत करके बतलाते। बोलने की चेष्टा करने से केवल फुफ्फुसाहट ही निकलती। उस दिन श्री रामकृष्ण का कराहना सुन नरेन्द्रनाथ को लगा कि क्या यही व्यक्ति राम या कृष्ण के रूप में आया था? पीड़ा से चिल्लानेवाला व्यक्ति राम या कृष्ण हो सकता है—असम्भव! नरेन्द्र के मन में उठा—यदि पीड़ा के इन क्षणों में फिर से एक बार वही बात इनके मुख से निकले, तभी मैं उनके कहे का विश्वास करूँगा।' नरेन्द्र के मन में इस विचार के कौंधने की देर थी नहीं कि श्री रामकृष्ण ने आँखें तरेर कर उनकी ओर देखा और अपनी समूची शक्ति बटोरकर बोल उठे, "अरे, अभी भी अविश्वास! फिर से कहता हूँ—जो राम, जो कृष्ण वही इस बार रामकृष्ण, पर तेरे वेदान्त की दृष्टि से नहीं, प्रत्यक्ष!" श्री रामकृष्ण की वाणी पूरे कमरे में गूंज उठी और सभी ने उसे सुना। नरेन्द्र के विस्मय की सीमा न रही और उनका सन्देह सदैव के लिए समाप्त हो गया। श्री रामकृष्ण कितने सजग हैं। 'पर तेरे वेदान्त की दृष्टि से नहीं" यह कहना वे नहीं भूले। वेदान्त की दृष्टि से तो मैं, आप सभी अवतार हैं। वैसे वेदान्त अवतार की बात स्वीकार नहीं करता वह तो सभी को ब्रह्मरूप मानता

है। इस लिए श्री रामकृष्ण कहते हैं कि मैं सिद्धान्त की नहीं, प्रत्यक्ष की बात कह रहा हूँ। वे प्रत्यक्ष को और भी प्रत्यक्ष बना देते हैं।

अब यदि श्री रामकृष्ण राम थे, कृष्ण थे, और सारदा यदि उनकी शक्ति हैं, तब तो सारदा सीता थीं, राधा थीं यही निस्पन्न होता है। श्री रामकृष्ण ने अपना राम होना कृष्ण होना तो प्रमाणित कर दिया; क्या माँ भी अपना सीता होना, राधा होना प्रमाणित करती हैं? हाँ करती हैं। अपनी अनुभूति के माध्यम से करती हैं। यही माँ के जीवन की विलक्षणता है, जिससे प्रमाणित होता है कि रामकृष्णभाव ही सारदा-भाव है, और सारदा-भाव ही रामकृष्ण भाव।

श्री रामकृष्ण की महासमाधि के पश्चात् जब माँ लगभग एक वर्ष वृन्दावन में रहीं, उस समय उन्हें अपने राधा होने का भान हुआ था और किसी भक्त के पूछे जाने पर उत्तर में उन्होंने कहा था, "मैं ही राधा हूँ।" फिर जब वे रामेश्वर गयीं और शिवलिंग के दर्शन-स्पर्श किये, त्योंही अचानक उनके मुख से निकल पड़ा, "जैसा रख गयी थी वैसा ही देखती हूँ।" गोलाप माँ ने उनकी यह बात सुन ली। निवास स्थान में लौटने पर गोलाप माँ ने उनसे पूछा, "माँ, मन्दिर में दर्शन करते समय तुम्हारे मुँह से एक अद्भुत बात निकली। "कैसी बात, गोलाप?" माँ ने अनजान बनकर पूछा।

"माँ, देखो, तुम बहुत छिपाती हो, तुमने वहाँ कहा था —'जैसा रख गयी थी वैसा ही देखती हूँ, इसका क्या मतलब?" गोलाप का प्रश्न था।

माँ बोलीं, "अब मुँह से कितनी बातें निकलती रहती हैं, क्या सबको पकड़कर बैठना होता है? मुँह से निकल गयी होगी कोई बात। उसका मतलब-वतलब क्या? और ऐसा कह माँ ने बात ही काट दी और वह आयी गयी हो गयी। माँ लौटकर कलकत्ता आ गयीं। कोआलपाड़ा के श्री केदार (स्वामी केशवानन्द) उनसे मिलने आये। यात्रा का हाल-चाल पूछा "माँ यात्रा कैसी रही?" "केदार, यात्रा बहुत अच्छी रही। बेटे शशि (स्वामी रामकृष्णानन्द) ने बहुत अच्छी व्यवस्था की थी।"—माँ का उत्तर था।

"रामेश्वर-दर्शन कैसा रहा माँ"— केदार ने प्रश्न किया। "बहुत अच्छा रहा, केदार! और जब मैंने रामेश्वर शिव के दर्शन किये तो मुझे बस ऐसा लगा कि जैसा रख गयी थी वैसा ही है।"—माँ बोलीं।

गोलाप माँ वहाँ से जा रही थीं। यह सुनते ही बोल पड़ी, 'बस, बस माँ, तुम अब पकड़ में आ गयी! अब बात काट नहीं सकती हो। सुनो, केदार, तुमने भी सुना, माँ ने जो कहा, तुम साक्षी हो।" माँ मुस्करा कर रह गयीं।

माँ का संकेत यह है कि उन्होंने सीता के रूप में रामेश्वर शिवलिंग की स्थापना की थी। पर प्रश्न यह है कि यह प्रसंग तो किसी प्रचलित रामायण में नहीं दिखाई देता। फिर इसका प्रमाण क्या? मैंने कई रामायणें देखी, पुराणों को पढ़ा। 'स्कन्दपुराण' में इसका प्रमाण मिला। वहाँ ब्राह्मखण्ड में 'सेतु माहात्म्य' के अन्तर्गत कथा आती है कि रावण का वध करके श्रीरामजी एवं सीताजी अन्य दूसरों के साथ पुष्पक विमान में बैठ लंका से लौटते हुए सेतुबाँध में उतरते हैं और सीताजी को सेतु दिखलाते हैं। श्री राम को सलाह दी जाती है कि रावण के ब्राह्मण होने के नाते ब्रह्महत्या का प्रायश्चित करने के लिए वे वहाँ पर शिवलिंग की स्थापना कर पूजा करें। हनुमानजी को शिवलिंग लाने कैलास भेजा जाता है, पर उनके लौटने में विलम्ब होते और स्थापना का मुहूर्त बीतते देख श्रीराम के निर्देश पर सीताजी वहीं की बालुका से शिवलिंग का निर्माण करती हैं और दोनों मिलकर उसकी स्थापना और पूजा करते हैं। और यह कैसी अद्भुत बात है कि माँ सारदा की अनुभूति उस घटना का प्रमाण बनकर हमारे सामने आती है और ठाकुर की उस बात को भी प्रमाणित कर देती है, जिसमें उन्होंने कहा था—

'जो राम, वही इस बार रामकृष्ण।

ऐसे हैं रामकृष्ण! ऐसी हैं सारदा! अपनी शक्ति को श्री रामकृष्ण छोड़ जाते हैं अपना भाव पुष्ट करने। यह तो माँ के श्रीमुख की ही वाणी है। वे कहा करती थीं, 'देखो बेटे, ठाकुर के जाने के बाद मैं भी जाना चाहती थी. पर उन्होंने मुझे जाने नहीं दिया, वे मुझे यहीं रख गये। ईश्वर का मातृभाव दिखाने वे मुझे छोड़ गये हैं, बेटा!" और छोड़ ही तो गये थे ठाकुर उन्हें—जबरदस्ती करके। ईश्वर का मातृभाव क्या होता है इसे अपने जीवन के माध्यम से दिखाने। ठाकुर अपने अन्तिम दिनों में माँ की ओर एकटक ताका करते थे, जैसे कुछ कहना चाहते हों। एक दिन माँ ने पूछा, "तुम इस प्रकार मेरी ओर क्यों देखते हो भला? कुछ कहना चाहते हो?" ठाकुर शिकायत के स्वर में बोले, "क्या सब कुछ अकेले ही मुझे करना है? तुम कुछ नहीं करोगी?" माँ चकित हो गयीं, बोलीं, "यह करने धरने की क्या बात कर रहे हो? मैं औरत की जात, मैं भला क्या करूँगी?"

"नहीं, तुम्हें करना है। कलकत्ते के लोग कीड़ों की भाँति बिलबिला रहे हैं। तुम्हें उनका उद्धार करना है। और यह कह श्री रामकृष्ण ने संकेत कर दिया कि माँ को क्या करना है। फिर एक दिन नरेन्द्र आदि बालक भक्तों की ओर इशारा करते हुए कहा, "तुम्हें इन लड़कों को देखना है।" और वे तेंतीस वर्ष की विधवा सारदा पर उन लड़कों का भार डालकर चले जाते हैं। ये लड़के हैं कौन?—तेईस वर्ष का नरेन्द्र, तेईस वर्ष का राखाल, लगभग उसी उम्र के बाबूराम, शरत्, शशि, निरंजन, योगेन, सारदाप्रसन्न, काली, हरिनाथ आदि, फिर बत्तीस वर्ष के तारक और लगभग पचपन वर्ष के गोपाल। तेंतीस वर्ष की विधवा इन लड़कों को देखेगी। पर देखा ही तो उसने। श्री रामकृष्ण नाछोड़ाबन्दा जो हैं। वह संघजननी बन गयी। लड़कों ने बनाया रामकृष्ण संघ और सारदा बन गयी संघजननी। सबका मातृवत् पालन किया। जैविक मातृत्व से ऊपर उठकर ईश्वर का मातृत्व लोगों के सामने रखा। उन्हें देखकर लोग समझ पाये कि ईश्वर का मातृत्व क्या होता है। वैसे तो संसार में माता का प्यार सबसे उत्कृष्ट माना गया है, क्योंकि उसमें स्वार्थ का लेश नहीं होता। पति-पत्नी के परस्पर प्यार में स्वार्थ रहता है, पर माँ अपनी सन्तान से जो प्यार करती, उसमें स्वार्थ की गन्ध तक नहीं होती। वह रात-रात जागकर अपने रुग्ण बच्चे की सेवा करती है—यह सोचकर नहीं कि जब मैं बूढ़ी हो जाऊंगी तब यह मेरी सेवा करेगा। वह केवल निश्छल प्यार के कारण ऐसा करती है। पर ऐसा पवित्र मातृत्व भी एक जगह जाकर सीमित हो जाता है। एक माता जैसे अपने बच्चे से प्यार करती है, वैसा दूसरे के बच्चे से नहीं कर सकती। यही जैविक मातृत्व की सीमा है। ईश्वर के मातृत्व में ऐसी कोई सीमा नहीं। ईश्वर का मातृत्व तो पापी-पुण्यात्मा, साधु-असाधु सबको समान रूप से प्यार बाँटता है। तभी तो माँ ने कहा था, "मैं सत् की भी माँ और असत् की भी माँ।" उनके ईश्वरीय मातृत्व के सामने सज्जन-दुर्जन का भेद नहीं था। मानो सभी उनके पेट के जाये बच्चे थे। अमजद की कथा जानी हुई बात है। माँ का कितना प्यार है अमजद पर पर। अमजद मुसलमान है, चोर है, कई बार जेलखाने की हवा खा आया है। गाँव के लोग उसकी छाया से भी दूर भागते हैं। इतना पातकी है वह सबकी आँखों में। पर अमजद के प्रति माँ के प्यार में कोई कमी नहीं। गाँववाले कहते हैं, "माँ तुमने इन मुसलमानों को सिर पर चढ़ा दिया है। तुम इन्हें काम देती हो, प्यार से इनसे बातें करती हो, और इधर ये चोरी करते हैं, डाका डालते हैं।" माँ बोलीं, 'देखो, तुम लोग तो इन्हें काम देते नहीं। इनके पेट में भी तो आग है। आग को कैसे भी बुझाना तो है। काम ही नहीं दोगे तो चोरी करके, डाका डालके अपने पेट की आग बुझाएँगे। तुम लोग तो हरदम इनको दुरदुराते ही रहते हो। मैं प्यार से बोलती हूँ तो मेरे पास आते हैं। इससे तुमको क्या?" और

मां के पास वे सब आते हैं, मां उन्हें काम देती है।

अमजद माँ के मकान के छप्पर की मरम्मत कर रहा है। बेला हो गयी है। माँ ने दो-तीन बार पुकारा 'अमजद बेटा, थोड़ा कुछ खा लो, फिर करना। 'अमजद' हाथ के काम को निपटा देना चाहता है। कहता है, "बस, अभी आया, माँ!" एक ने अमजद से कहा, "कैसे हो! माँ तुम्हारे लिए बिना खाये बैठी है और तुम हो कि उतर नहीं रहे हो! अमजद अवाक् रह गया। "माँ मेरे लिए बिना खाए बैठी है?"—विश्वास नहीं कर पा रहा है। ऐसा तो उसकी गर्भधारणी माँ ने कभी नहीं किया। वह काम छोड़कर नीचे उतरा, माँ के पास जा शिकायत के स्वर में बोला, "माँ यह क्या? तुम मेरे लिए बिना खाये बैठी हो! यह तो अन्याय है, माँ!" माँ ने पुचकारते हुए कहा, "अरे, अगर घर में कोई सन्तान बिना भोजन किये रहे, तो माँ कैसे खा सकती है? चलो, हाथ-मुँह धो लो और खाने बैठो।" अमजद आँगन में खाने बैठा। माँ की भतीजी नलिनी चीजें फेंक-फेंककर अमजद की पत्तल पर परोसने लगी। माँ ने यह देख कहा, "अरे, इस प्रकार परोसने से क्या कोई पेट भर खा सकता है? ला, तुझसे नहीं बनता तो मैं परोसे देती हूँ।" और माँ अमजद के पास बैठ गयीं। पत्तल में प्यार से खाने की चीजें परोसते हुए बोलीं, "बेटा, थोड़ा भात और ले लो। आज अमजद ने जी भरकर भोजन किया। जीवन में कभी उसे इतनी तृप्ति नहीं मिली थी। और जब वह पत्तल उठाने लगा तो माँ ने रोक दिया, कहा, "रहने दो, उसके लिए और लोग हैं।" और लोग कौन थे भला? माँ स्वयं हो थीं। उन्होंने जूठी पत्तल उठा कर फेंकी, स्थान को साफ किया। नलिनी यह देखते ही चिल्ला उठी, "ओ बुआ, तुम्हारी जात गयी!" माँ बोलीं, "चुप रह, जैसे शरत् मेरा बेटा है, वैसे ही अमजद भी!" कहाँ शरत्—स्वामी सारदानन्द, श्री रामकृष्ण के संन्यासी-शिष्य, रामकृष्ण संघ के महासचिव, और कहाँ मलेच्छ, चोर, जेल की हवा खानेवाला अमजद! यही ईश्वर का मातृत्व है।

दक्षिणेश्वर की घटना। माँ ठाकुर का भोजन थाल सजाकर नौबतखाने से उनके कमरे में ले जा रही हैं। एक महिला ने बीच में माँ को रोककर कहा, "माँ, थाल मुझे दे दो, मैं ठाकुर के कमरे में रख आती हूँ।" माँ ने थाल दे दी और वह उसे ठाकुर के कमरे में रख आयी। माँ कुछ क्षण पश्चात् गयीं। थाल की चीजें सजा दीं और ठाकुर से कहा, "आओ, खा लो।" माँ ने देखा, ठाकुर रूठे बैठे हैं। दो-तीन बार माँ ने पुकारा, पर ठाकुर उसी प्रकार बैठे रहे। "आज क्या हो गया तुम्हें? ऐसे मुँह फुलाए क्यों बैठे हो? आओ भोजन ठण्डा हो जाएगा।"—माँ ने फिर कहा।

"तुम जानती हो वह औरत कैसी है? वह दुराचारिणी है।"—ठाकुर बोले।

"हाँ जानती हूँ" माँ का उत्तर था।

"जब तुम जानती हो कि मैं ऐसे लोगों का छुआ नहीं खा सकता तो फिर उसके हाथ भेजा क्यों? तुम तो खाने को कहती हो, पर मेरी तो नजर ही उधर नहीं जा रही है।"—ठाकुर ने आक्रोश व्यक्त किया। माँ ने मनुहार की। कहा, क्या करूँ, उसने थाल माँगी तो मैंने दे दी। अब और विलम्ब न करो, खा लो।" ठाकुर उठते हुए बोले, "अच्छा, वचन दो अब से तुम ऐसा नहीं करोगी।" इस पर मां ने हाथ जोड़ लिया और अनुनय के स्वर में बोलीं, "ठाकुर, ऐसा वचन नहीं दे सकती। अगर कोई 'माँ' कहकर मुझे पुकारे और मुझसे कुछ मांगे, तो मेरे लिए कुछ भी अदेय नहीं होगा।"

क्या अद्भुत बात है! यही ईश्वर का मातृत्व है। उसके लिए कुछ भी अदेय नहीं है। आवश्यकता है केवल मां कहकर पुकारने की। कहीं कोई भेदभाव नहीं। जिन्हें समाज 'अछूत' कहता रहा है, उन्हें भी मां की कृपा मिली। वे भी मां से मंत्रदीक्षा प्राप्त करके धन्य हुए। मां का जीवन इस तरह की घटनाओं से भरा पड़ा है।

'उद्बोधन' की बात है। एक १९-२० साल की लड़की सीढ़ी चढ़ कर ऊपर गयी और दरवाजे के पास

खड़ी होकर सुबकने लगी। मां भीतर थीं। सुबकने की आवाज उनके कानों में गयी। मां वहीं से बोली, "कौन है, बेटी ? क्यों रो रही हो ? भीतर आ जाओ।" मां का प्यार-भरा शब्द सुनकर लड़की का रोना और बढ़ गया। वह रोते-रोते कहने लगी, "नहीं मां, तुम मेरी बात सुनोगी तो तुम मुझे अन्दर नहीं आने दोगी, जैसे मेरी अपनी मां ने नहीं आने दिया। मैं पतिता हूँ, गिर पड़ी हूं, घरवालों ने मुझे निकाल दिया है।" और ऐसा कह वह और भी जोर से रोने लगी। तब मां सारा काम छोड़कर बाहर आयीं, लड़की को अपनी छाती से लगा लिया और अपनी भुजाओं में भरकर उसे भीतर ले जाते हुए बोलीं, "देखो, यदि सन्तान कीचड़ में गिरकर अपने को सान ले तो क्या मां उसे फेंक देती है ? नहीं, उसे गोद में उठाती है साफ करती है। ठीक है, तुम फिसल गयी हो, पर यह जो तुम्हें अनुताप हो रहा है, उसी से होगा। मैं तो तुम्हारी मां हूँ !"

यह ईश्वर का मातृत्व है। अपनी कितनी सन्तानों से मां ने कहा, "मुझ तुम्हारी मां के रहते तुम्हें डर किस बात का, बेटा।" यह माँ की हम सबके लिए आश्वासन वाणी है, अभय वाणी है।

जयरामवाटी की घटना है। २०-२२ साल का लड़का कलकत्ते से शरत् महाराज (स्वामी सारदानन्दजी) का पत्र लेकर आया है। मां से दीक्षा लेना चाहता है। बहुत छोटी कोई नौकरी करता है। उसकी मां बचपन में मर चुकी है, इसलिए किसी को उसने 'मां' कहकर नहीं पुकारा है। मां ने उसे बड़े प्यार से अपने पास रखा। दीक्षा दी। कुछ दिन वहां रहने के बाद आज वह कलकत्ता लौट रहा है। उसने आकर मां को प्रणाम किया। मां के मन में एक अफसोस रह गया कि लड़के ने एक बार भी मुझे मां कहकर नहीं पुकारा। अब क्या करें ! मां को प्रणाम करके लड़का चलने को उद्यत हुआ। मां ने शरत् महाराज के लिए एक सन्देशा दिया और उससे कहा, "देखो बेटा, तुम जाकर शरत् से कहना कि मां ने आपके लिए सन्देशा दिया है।" लड़के ने हामी भरते हुए सिर हिला दिया। जब वह चलने लगा, तो मां ने उससे पूछा, "अच्छा, बोलो तो, तुम शरत् से क्या कहोगे ?" लड़का बोला, 'मैं उनसे कहूँगा कि आपने उनके लिए यह सन्देशा भेजा है।"

"नहीं, ऐसा नहीं, उससे कहना कि मां ने आपके लिए यह सन्देशा भेजा है।"—मां ने 'मां' शब्द पर जोर देते हुए कहा।

लड़के ने स्वीकृति में पुनः सिर हिला दिया। और मां के पूछने पर कि वह जाकर शरत् से क्या कहेगा, वही पहलेवाला उत्तर दुहरा दिया। पर मां हारी नहीं। जबतक लड़के ने यह नहीं कहा कि 'मैं शरत् महाराज से कहूँगा कि मां ने आपके लिए यह सन्देशा भेजा है; तब तक मां ने छोड़ा नहीं। और उसके मुँह से इस प्रकार 'मां' सुनकर मां को कितना आनन्द हुआ यह वर्णनातीत है। कितने बड़े-बड़े लोग 'मां' कहकर पुकार रहे हैं, पर उससे तृप्ति नहीं है। इस लड़के ने 'मां' कहकर नहीं पुकारा—इसी से मां अतृप्त हैं ?

यही ईश्वर का मातृत्व है, जिसे दिखाने के लिए ठाकुर मां को छोड़ गये थे। यही मां के द्वारा रामकृष्ण भाव को पुष्ट करना है।

फिर एक दूसरे ढंग से भी देखें। श्री रामकृष्ण के जीवन का मूलमंत्र था—"अद्वैत ज्ञान को कपड़े के खूंट में बांधकर जो चाहे करो।' उनका जीवन उनके इसी कथन की विस्तृत व्याख्या था। मां भी अपने जीवन की छोटी से छोटी क्रिया के द्वारा इस सिद्धान्त को पुष्ट करती रहीं। ऊपर से देखने पर ऐसा लग सकता है कि मां संसार में कितनी लिप्त हैं, पर उनका अद्वैत ज्ञान कभी नहीं छूटा।

जयरामवाटी में मां अपने पुराने मकान के बरामदे में बैठी हुई थीं। एक सेविका झाड़ू से आंगन बुहार रही थी और बुहारने के बाद उसने झाड़ू एक ओर

फेंक दी। मां बोल उठीं, "यह क्या? जो झाड़ू स्वयं गन्दी होकर तुम्हारी गन्दगी दूर करती है, उसके साथ ऐसा व्यवहार?" वे स्वयं उठीं, झाड़ू को हाथ में उठाया और हाथ को माथे से लगाया, मानो झाड़ू को प्रणाम कर रही हो और उसे करीने से एक ओर रख दिया। अब इससे बढ़कर अद्वैत-ज्ञान का निदर्शन क्या हो सकता है?

ठाकुर ने उनसे कहा था—"इन लड़कों को देखना।' मां ने आपत्ति की थी, पर आखिर में लड़कों को उन्हीं को देखना पड़ा। उन्हें संघ जननी बनकर इन लड़कों का मार्ग दर्शन करना पड़ा। जब कभी उन लोगों को कोई संशय होता, मां उसका निराकरण करतीं। उनमें मतभेद होता, मां उसे दूर करतीं। श्री रामकृष्ण ने मंत्र दिया—'शिवज्ञान से जीव-सेवा'। नरेन्द्रनाथ स्वामी विवेकानन्द के रूप में विश्वप्रसिद्ध बनकर विदेश से भारत लौटे। तब मठ आलम बाजार में था। स्वामीजी अपने गुरुभाइयों और मठ के नव संन्यासियों के समक्ष श्री रामकृष्ण द्वारा प्रतिपादित सेवाधर्म समझाने लगे और अपनी कार्य प्रणाली उनके सामने रखने लगे। उनके गुरुभाई योगानन्द जी ने विरोध करते हुए कहा, "यह जीव-सेवा का कार्य तुम्हारे दिमाग का उपज है। ठाकुर ने ऐसा उपदेश नहीं दिया। वे तो यही कहते थे कि ईश्वर-लाभ ही जीवन का उद्देश्य है, और तुम पश्चिम से सेवा-सेवा की बात लाकर हमारे सिर पर थोप रहे हो।" और केवल योगानन्द ही क्यों, श्री रामकृष्ण के कुछ अन्य शिष्य भी ऐसा ही विचार रखते थे। यहां तक कि 'श्री रामकृष्णवचनामृत' के लेखक 'म' (महेन्द्रनाथ गुप्त) भी ऐसा ही सोचते थे। अब फैसला कैसे हो? श्री रामकृष्ण तो भौतिक शरीर में थे नहीं। तब मां निर्णय देती हैं। वे संशय दूर करती हैं।

उस समय मां वाराणसी में थीं। वहां का सेवाश्रम देखकर उन्हें बड़ी प्रसन्नता हुई और उन्होंने अपने आशीर्वाद स्वरूप सेवाश्रम को १०) का एक नोट भेंट में दिया। वह नोट अभी भी सुरक्षित रखा हुआ है। तब 'म' भी वहीं थे। कुछ संन्यासियों ने 'म' से कहा, "मास्टर महाशय, हम जाकर मां से फैसला करा लेते हैं कि यह सब सेवा-कार्य ठाकुर की इच्छा के अनुरूप है या नहीं।" सब लोग मां के पास गये और और मन का संशय प्रकट किया।" मां उत्तर में बोलीं, "देखो बेटा, नरेन ने वही किया जो ठाकुर ने चाहा था।" तात्पर्य यह कि विवेकानन्द ने अपने मन से यह सब नहीं किया, उन्होंने केवल श्री रामकृष्ण की इच्छा को रूपायित किया। इस प्रकार मां ने रामकृष्ण संघ और उसके सेवा-कार्यों पर मुहर लगा दी। यही मां के द्वारा रामकृष्ण-भाव-आन्दोलन को पुष्ट करना है, उनका संरक्षण करना है। यही उस आंदोलन में मां की भूमिका है। ईश्वर-दर्शन मां की मुट्ठी में बंधा था; शिवज्ञान से जीव सेवा पर उन्होंने अपनी मुहर लगायी; सन्तानों में किसी भी प्रकार जाति या धर्म का विचार नहीं किया, जो भी उनके पास आया सबको बिना किसी भेद-भाव के दीक्षा दी; पापी से घृणा नहीं की, उसे प्यार ही दिया और अपने स्नेह के द्वारा उसे सन्मार्ग पर लगा दिया। सबसे बड़ी बात, ठाकुर को पाने का पथ सुगम कर दिया। उनके श्री मुख से ही कई बार सुना गया कि उनमें और ठाकुर में कोई भेद भाव नहीं है। उनको पाना मानो ठाकुर को पाना। और उनको कैसे पाना?—इसका रास्ता तो उन्होंने बता दिया है। "सब समय जानना कि तुम्हारी एक मां है।" "मुझ तुम्हारी मां के रहते डर किस बात का बेटा?" यह उनके श्रीमुख की वाणी है। वे तो हमें अपनी गोद में उठा लेने को तैयार खड़ी हैं, बस, एक बार 'मां' की पुकार भर हमसे सुनना चाहती हैं। हम पुकारें तो सही, उनके हाथ तो हमें लेने के लिए बढ़े ही हुए हैं। पर खेद यह है कि हम पुकार नहीं पा रहे हैं। पेट का जाया बच्चा भी जबतक व्याकुल होकर मां को नहीं पुकारता, उसकी मां आकर उसे गोद में नहीं लेती। खेल-खेल में तो वह कई बार मां को पुकारता है, पर मां जानती है कि वह व्याकुल होकर

नहीं पुकार रहा है, यों ही बुला रहा है। पर जब बच्चा सचमुच मां को चाहता है, तब मां उसकी पुकार सुनकर ही समझ जाती है कि अब बच्चे के पास उसे जाना है। इसी प्रकार हम भी 'मां' 'मां' कहते तो रहते हैं, पर मां जानती है कि यह पुकार सच्ची नहीं है। और हम शिकायत करते हैं कि हमने इतनी बार मां को पुकारा पर मां नहीं आयी। श्री रामकृष्ण एक गीत गाया करते थे—

'डाक देखि मन डाकार मतन केमन श्यामा थाकते पारे'—'अरे मन, जरा पुकारने के समान तो पुकार, फिर देख मां श्यामा बिना आये कैसे रह सकती ?"

और भी एक काम किया है मां ने। ठाकुर से वरदान ले रखा है हम सबके लिए। एक दिन वे श्री रामकृष्ण से बोलीं, "तुम राम के रूप में आये, कृष्ण के रूप में आये, अबकी इस रूप में आये हो। इस रूप में आने की तुम्हारी विशेषता क्या है ?" श्री रामकृष्ण समझ नहीं पाये। बोले, "तुम कहना क्या चाहती हो ?"

"यह कि जो भी तुम्हारे पास आये, तुम्हारा नाम ले उसको कम से कम अन्त समय में भी आकर अपने साथ लेते जाना।" मां ने अपनी बात स्पष्ट करते हुए कहा।

"तथास्तु ?"—यह ठाकुर का वरदान था।

(विवेक ज्योति : वर्ष २७ अंक ४ से साभार)

पतित पावनी माँ सारदा

स्वामी ब्रह्मेशानन्द
रामकृष्ण मिशन सेवाश्रम, वाराणसी

पवित्रं चरितं यस्याः पवित्रं जीवनं तथा।
पवित्रता स्वरूपिण्ये तस्यै कुर्मो नमो नमः॥

वर्षा काल का एक सुपरिचित दृश्य। सड़क के पास छोटे-छोटे गड्ढो में पानी भरा है। बच्चों के तो आनन्द की सीमा ही नहीं है। कोई काग़ज की नाव बनाकर तैरा रहा है, तो कोई नाली बना रहा है। अचानक एक बच्चा फिसल कर कीचड़ में गिर गया कपड़े भींग गये और वह स्वयं कीचड़ में लथ-पथ हो गया। सभी बच्चे एक साथ जोर से हंस दिये। बेचारा बालक, रुआँसा हो गया है। सामने ही उसका घर था, हल्ला सुन कर उसकी माँ बाहर आयी। माँ को देखते ही बच्चे का अभी तक दबा रोना फूट पड़ा। माँ ने झट बच्चे को गोद में उठाया और अन्दर ले गयी, पुचकारा, और नहला धुलाकर साफ कपड़े पहना दिये।

प्रत्येक घर में घटने वाली यह एक साधारण सी घटना है। बच्चे के फिसल कर गिरने व माँ द्वारा इसे धो-धाकर साफ करने में कोई अस्वाभाविकता नहीं है। माँ के किए यह कोई बड़ा कार्य भी नहीं है। माँ बच्चे को साफ नहीं करेगी तो और कौन करेगा ? माँ सारदा भी यही कहती थीं "मेरा लड़का यदि धूल धूसरित हो तो मुझे ही तो झाड़ फूंक कर उसे साफ करना होगा।" लेकिन यह कथन भौतिक अथवा शारीरिक स्वच्छता के सन्दर्भ मे नही है। जिस नैतिक दूषण को समाज मे पाप के नाम से पुकारा जाता है, उसी को माँ सारदा दूर करने का कठिन कार्य इस सहजता एवं सरलता से करती थीं, जैसा एक माँ करती है। किसी के चरित्र को परिवर्तित करना, तथा उसके पूर्वकृत दुष्कर्मों को नष्ट करना या उनके फल को स्वयं

के शरीर पर व्याधि अथवा वेदना के रूप में वहन करने का कार्य केवल विशेष आध्यात्मिक शक्ति सम्पन्न महापुरुष ही कर सकते हैं। इस सन्दर्भ में उनकी एक और उक्ति है, "भले लोग की माँ तो सभी हो सकते हैं, बुरे की माँ कौन होना चाहेगा! अगर मैं उनके पापों का वहन न करूँ तो कौन करेगा।" स्वयं एवं श्रीरामकृष्ण के अवतारत्व के सम्बन्ध मे वे कहती थीं: 'हमारा आगमन तो इसीलिए (अर्थात् पतितोद्धार के लिए) है। हम लोग केवल रसगुल्ला खाने के लिए नहीं आए हैं।।"

दूसरों को पवित्र करने के लिए सर्वप्रथम उच्च-कोटि की पवित्रता की आवश्यकता है। जिस जल से हम अपने वस्त्र को धोकर साफ करते हैं, अगर वही मैला हो तो वह वस्त्र को कैसे धोयेगा? ठीक इसी प्रकार कोई अपवित्र व्यक्ति कभी किसी दूसरे को पवित्र नहीं कर सकता। आध्यात्मिक एवं मानसिक पवित्रता एवं अपवित्रताएं संक्रामक गुण है, एवं जिस मात्रा में व्यक्ति पवित्र होगा उसी मात्रा में वह उसका प्रसार दूसरे में कर सकता है। माँ सारदा निर्विवाद रूप से पवित्रता स्वरूपिणी थीं। अपने शरीर के वात आदि रोगों के सन्दर्भ में उन्होंने कहा था कि ये दूसरों के पाप वहन करने के कारण हैं, स्वयं के पापों के कारण नहीं। एक शिष्य से वार्तालाप के दौरान उन्होंने कहा था कि उन्होंने स्वयं जीवन में कोई पाप नहीं किया। युगावतार श्रीरामकृष्ण का संस्पर्श उन्हें पाँच वर्ष की उम्र में ही प्राप्त हुआ था। ऐसी स्थिति में पाप की संभावना ही कहाँ है? श्रीरामकृष्ण ने भी माँ सारदा की निष्पापता को प्रमाणित किया है। अपने दाम्पत्य सम्बन्ध के सन्दर्भ में उन्होंने स्वीकार किया था कि यदि माँ सारदा नितान्त पवित्र एवं निष्काम न होती तो कौन कह सकता है कि उनके स्वयं के संयम का बांध न टूट जाता? श्रीरामकृष्ण तो माँ सारदा को गंगा के सदृश पवित्र मानते थे। माँ को सांसरिक कर्मों में सदा लिप्त देखकर एक बार माँ की सदा संगिनी योगीन माँ के मन में माँ सारदा के विषय में यह संशय उपस्थित हुआ था कि वे तो घोर माया में आबद्ध हैं। इसके बाद गंगा स्नान के समय उन्हें अचानक श्रीरामकृष्ण के दर्शन हुए। श्रीरामकृष्ण ने उन्हें गंगा में बह रही एक नवजात शिशु की मृत देह को दिखाते हुए बताया कि जिस प्रकार इस मृत देह के स्पर्श से गंगा अपवित्र नहीं होती उसी प्रकार सांसारिक संस्पर्शों से माँ सारदा की पवित्रता अक्षुण्ण बनी रहती है। पर माँ तो गंगा से भी अधिक पवित्र थीं। एक बार उनके घर की एक सेविका ने किसी अपवित्र वस्तु का स्पर्श कर दिया जिसके प्रभाव से मुक्त होने के लिए ठंड के दिन होते हुए भी वह स्नान करना चाहती थी। इस पर माँ ने कहा कि हाथ पैर धो लो, उसी से हो जायेगा। पर उसे इस विधान से संतोष नहीं हुआ तब माँ से सुझाया कि गंगा जल छिड़क लो और पी लो। जब यह निर्देश भी उसे उचित नहीं लगा तो माँ ने कहा, "तब मुझे स्पर्श कर लो।" अपनी पवित्रता के प्रति ऐसा नैसर्गिक दृढ़ विश्वास विरले ही किसी में सम्भव है।

दूसरों में, दोष-दृष्टि का अभाव भी माँ सारदा की पवित्रता का एक प्रमाण एवं लक्षण था। हम स्वयं दोष युक्त होते हैं, इसीलिए हमें बाहर दूसरों में दोष दिखाई देते हैं। बच्चे को दोष नहीं दिखते। उसे चोर डाकू बदमाश नहीं दिखते, क्योंकि उनका अन्तः करण पवित्र होता है। माँ सारदा का भी हृदय इसी तरह पूर्ण रूप से निष्पाप था। उन्होंने वृन्दावन में बाँके बिहारी से रो-रोकर प्रार्थना की थी, "प्रभु तुम्हारी देह-बक्र है, लेकिन मन सीधा है। मेरे मन से भी दोष-दृष्टि पूर्ण-रूप से नष्ट कर दो। परिणाम यह हुआ था कि वे किसी के भी दोष देख ही नहीं सकती थी। एक बार गोलाप माँ किसी दासी को डाँट रही थी। माँ के कारण पूछने पर उन्होने उन्हें मानो उलाहना देते हुए ही कहा कि तुमसे कहने से क्या लाभ, तुम तो किसी के दोष देख ही नहीं सकतीं। इस पर माँ ने कहा था, कि संसार में सभी दोष देखते हैं; यदि मैं न देखूँ तो इससे संसार में प्रलय नहीं हो जायेगा। माँ ने जन्म से ही पवित्र होते हुए भी पवित्र होने के लिए कठोर साधना की थीं। दक्षिणेश्वर में रात्रि को ध्यान करते समय वे चन्द्रमा की ज्योत्सना देखकर

प्रभु से रोकर प्रार्थना करती थीं, कि प्रभु चन्द्रमा में भी कलंक हैं, मेरे चरित्र में किसी भी प्रकार का कोई भी कलंक न हो। सत्य तो यह है कि माँ का मन पाप पुण्य की मान्यताओं से परे एक अत्यन्त उच्च भावराज्य में विचरण करता था।

पतितोद्धार की दूसरी शर्त है करुणा अथवा कृपा की भावना। माँ तो स्नेह प्रेम करुणा का मूर्तिमान विग्रह थीं। वास्तविकता तो यह है कि उन्होंने अपना सारा जीवन दूसरों के लिए ही व्यतीत किया। कोई उनको माँ कहकर पुकारता था तो वे रह नहीं पाती थीं, दया से विगलित हो पापी, तापी सभी को दीक्षा प्रदान करती थीं। श्रीरामकृष्ण की महासमाधि के बाद माँ सारदा को अपने शरीर धारण का कोई प्रयोजन ही दिखाई नहीं देता था। किन्तु श्रीरामकृष्ण के आविर्भाव के उद्देश्य अर्थात् जगत कल्याण के लिए ही, उनके आदेश से, उन्होंने अपना शरीर त्याग नहीं किया। अहैतुक करुणा-मयी माँ सारदा का असंख्य दृष्टान्तों से ओत प्रोत समग्र जीवन कृपा व करुणा की एक अविच्छिन्न गाथा है। अन्तिम संदेश भी यही है : 'यदि शान्ति चाहते हो तो किसी के दोष न देखो। दोष देखो अपने। कोई पराया नहीं है। सभी को अपना बनाना सीखो।"

पवित्रता एवं करुणामय हृदय के होते हुए भी बिना किसी विशेष आध्यात्मिक शक्ति के कोई भी पतितोद्धार का कार्य नहीं कर सकता। माँ सारदा में श्रीरामकृष्ण के अन्य शिष्यों से कहीं अधिक आध्यात्मिक शक्ति थी। जिन अत्यधिक आसुरी प्रवृत्ति के लोगों को स्वामी प्रेमानन्द, स्वामी ब्रह्मानन्द प्रभृति श्रीरामकृष्ण के अन्य संन्यासी शिष्य दीक्षा देने में असमर्थ होते थे, माँ सारदा अनायास ही उन्हें दीक्षा देने मे समर्थ होती थीं। एक बार तीन व्यक्ति दीक्षा प्रार्थी होकर बेलुड़ मठ गये। लेकिन उनके निकृष्ट चरित्र के कारण कोई उन्हें दीक्षा देना नहीं चाहता था; अतः उन तीनों को स्वामी प्रेमानन्दादि ने माँ सारदा के पास भेज दिया। जब माँ ने उन्हें देखा तो कह उठीं, "सन्तान विदेश से माँ को अच्छी वस्तुएं भेजता है, और इन लोगों ने, (अर्थात् स्वामी प्रेमानन्दादि संन्यासी सन्तानों ने) मुझे यह भेजा है?" फिर भी कृपामयी माँ ने उन तीनों व्यक्तियों को अस्वीकार नहीं किया। उन्होंने उन्हें जयराम बाटी के पुण्य क्षेत्र में तीन दिन रहने को कहा। उसके बाद उन्हें दीक्षा प्रदान की। बाद में इस घटना का वृतान्त सुनकर स्वामी प्रेमानन्द एवं स्वामी ब्रह्मानन्द सन्न रह गये थे। प्रेमानन्द जी कह उठे थे, "जय माँ, जय माँ। जिस विष को हम ग्रहण नहीं कर सकते, उसे वे अनायास ही ग्रहण करके पचा लेती हैं।"

संसार के दुर्बल प्राणियों की अशुभ कर्मों से निवृति का महत् कार्य माँ सारदा ने कई प्रकार से किया था।

(1) **मंत्र दीक्षा द्वारा**—ऐसा कहा जाता है, कि मंत्र दीक्षा के समय शिष्य के शुभाशुभ कर्म फलों का संचार गुरु में तथा गुरु के कर्मों का शिष्य में संचार होता है। इस सम्बन्ध में माँ सारदा की उक्तियां प्रमाण स्वरूप हैं। वे कहती थीं कि उनके शरीर की रोग-व्याधि आदि मंत्र शिष्यों के पापों को अपने शरीर में धारण करने के कारण हैं। इस प्रकार का पाप वहन केवल अधिकारी महापुरुष एवं विशेष आध्यात्मिक शक्ति संपन्न गुरु ही कर सकते हैं। सामान्य गुरु नहीं। लेकिन सामान्य गुरुओं द्वारा दीक्षा दिए जाने पर भी शिष्य में कुछ मनोवैज्ञानिक परिवर्तन होते हैं, जो उसके कर्मक्षय में सहायक होते हैं।

(2) यों तो माँ सभी शिष्यों के पाप पुण्य को स्वीकार करती थीं लेकिन कुछ शिष्यों से वे दीक्षा के समय विशेष रूप से ऐसा कहलवाती थीं : "आज तक किये सारे पाप मैंने तुम्हें समर्पित किये"। ऐसा करना उन कुछ शिष्यों के लिए आवश्यक होता था, जो अपने पापों की चेतना एवं स्मरण के बोझ से मानो दबे हुए थे। इस तरह कहलवाने से उनका बोझ हल्का हो जाता था, तथा वे निश्चित होकर माँ द्वारा निर्दिष्ट साधन पथ पर अग्रसर हो सकते थे। अपने दुष्कर्मों के लिए अनुतप्त होकर उन्हें गुरु, सन्त अथवा भगवान के सामने स्वीकार

करने तथा उन्हें पुनः न दुहराने का निश्चय करने से ही उनका प्रायश्चित हो जाता है। इसे ही तौबा, Repentence, आदि नामों से पुकारा जाता है। यह कार्य पुराने जीवन को त्याग कर नये जीवन को अंगीकार करने के समान होता है। मंत्र दीक्षा, बपतिस्मा, Conversion आदि के पीछे यही भाव है। व्यक्ति को प्रभु मानो एक अवसर देते हैं, कि वह अपने पूर्व जन्म को भूलकर, अनजान में किए बुरे कर्मों को त्याग कर नया जीवन प्रारंभ करे। ईसाई धर्म में इस मनोवैज्ञानिक प्रक्रिया को Justificatton का नाम दिया गया है। लेकिन इतने से ही कोई व्यक्ति सन्त नहीं हो जाता। आध्यात्मिकता एवं पवित्रता की प्राप्ति के लिए पुनः पाप- कर्म को न दुहराने के साथ ही साथ गुरूपदिष्ट पद्धति के अनुसार साधना अनिवार्य है। यह Santification कहलाता है। माँ सारदा इन दोनों प्रकारों से अपने शिष्यों को पवित्र करती थीं। उनमें आत्मविश्वास का संचार करके एवं उनमें उनके साथ शिष्यों के सम्बन्ध की अनुभूति डाल कर एकओर वे उनके पाप बोध को नष्ट करतीं एवं उन्हें उच्च चेतना प्रदान करतीं थी और साथ ही साधना करवाती थीं। वे कहती थीं, कि मुझे जो करना था, वह तो मैंने दीक्षा के समय एक साथ ही कर दिया, लेकिन अगर तुम फल लाभ करना चाहते हो तो साधना करो।

(3) इसके अतिरिक्त माँ स्वयं भी अपने शिष्यों के लिए साधना करती थीं। विशेषकर ऐसी दुर्बल सन्तानों के लिए जो सामाजिक परिस्थितियों अथवा व्यक्तिगत या असावधानी के कारण ध्यान जप करने में असमर्थ होते थे।

(4) और फिर उनके अति मानवीय प्रेम का दुर्निवार प्रभाव अनेक कुपथगामी, अथवा क्रूर प्रकृति लोगों को सन्मार्ग पर लाता था। अमजद नामक डकैत माँ के प्रेम के कारण उनके सामने सरल शिशु के समान हो जाता था।

माँ सारदा के पावन विग्रह में ऐसी निर्मल, स्निग्ध, पवित्र शक्ति थी कि जो कोई उनके संस्पर्श में आता था, पवित्र हो जाता था। भक्त यह अनुभव करते थे कि यदि वे प्रातः काल उनके दर्शन कर लेते, अथवा चरण स्पर्श कर लेते तो उनका सारा दिन अच्छा बीतता था। दूसरे शक्तों की अनुभूति तो उससे बढ़कर थी। एक भक्त कहते हैं कि वर्ष में एक बार जयराम बाटी में माँ के दर्शन कर लेने पर सारा वर्ष अच्छी तरह व्यतीत होता है।

एक बार माँ के एक गृहस्थ भक्त अपनी वासनाओं से अत्यन्त पीड़ित हो माँ के चरणों में उपस्थित हुए तथा अकपट भाव से अपने सभी दोषों को माँ से कह डाला। माँ चुपचाप सुनती रहीं, एवं केवल उनकी ओर एक टक देखती रहीं, लेकिन कहा कुछ नहीं, न ही उन दोषों को दूर करने का कोई उपाय ही बताया। बेचारे भक्त कुछ देर तक बैठकर खिन्न मन से उठकर चले गये। उनकी ग्लानि यह सोचकर और बढ़ गयी कि अपने पापों की बात माँ से कह कर कर व्यर्थ ही उन्हें कष्ट दिया। सांत्वना के लिए रामकृष्ण वचना मृत के संकलक, प्रसिद्ध भक्त मास्टर महाशय के पास पहुँचे। उन्हें उदास देखकर मास्टर महाशय ने कारण पूछा, जिसके उत्तर में उन्होंने सारी घटना का वर्णन करते हुए अन्त में यह कहा कि बस मेरी ओर देखती रहीं, बोली कुछ नहीं। उत्तर में मास्टर महाशय आह्लादित होकर बोल उठे : "माँ ने तुम्हारी ओर देखा है न! बस। और क्या चाहिए; "और एक बंगाली भजन की कड़ी दुहरा दी" सदानन्द सुखे भासे यदि श्यामा फिरे चाय।" अर्थात् यदि माँ श्यामा किसी की ओर मुड़कर देख भर लें तो वह आनन्द सागर में गोते लगाने लगता है।

क्या पतित पावनी माँ सारदा का अधमोचन का कार्य उनकी मर्त्य लीला की समाप्ति के साथ समाप्त हो गया है? नहीं, ऐसी बात नहीं है। माँ अभी भी विद्यमान हैं; माँ स्वयं चित्रों के सम्बन्ध में कहा करती थीं कि छाया ही काया है, माने महापुरुषों एवं भगवान में तथा उनके चित्रों में कोई भेद नहीं है। यदि इस बात को स्वीकार कर लिया जाये तो हम यही कहेंगे कि माँ आज भी अपने चित्रों मे विद्यमान हैं, एवं अपनी कृपादृष्टि से सभी को पवित्र कर रही हैं। हम अपने कमरे में माँ का एक चित्र लगा लें, एवं उनसे प्रार्थना करें कि माँ हम तुम्हारी दुर्बल सन्तान है, जो तुम्हारे उपदेशों का पालन नहीं कर पातीं। तुम ही कृपा करके हमें पवित्र करो। हम यदि तुम्हें न देखें, तो भी, तुम अपनी कृपा दृष्टि से हमें सदा पवित्र करती रहो।

स्नेहेन बध्नासि मनोऽस्मदीयं
दोषान् न शेषान्सगुणी करोषि।
अहेतुनानो दयसे सदोषान्
स्वांके गृहीत्वा यदिदं विचित्रम्॥

क्रिसमस के अवसर पर

ईसा मसीह : जीवन तथा उपदेश

स्वामी वागीश्वरानन्द
रामकृष्ण मठ, नागपुर

भूमिका :

प्रभु ईसा मसीह के साथ श्रीरामकृष्ण संघ का आध्यात्मिक संबंध दीर्घ दिनों का है—संघ के प्रतिष्ठाता भगवान श्रीरामकृष्ण के समय से है।

आज यह एक सर्वजनविदित सत्य है कि वेदांत के इतिहास में धर्म की सार्वभौमिकता (Universality) एवं सर्व धर्मों की एकता (Unity) की दिशा में श्री रामकृष्ण का अवदान अन्यान्य धर्माचार्यों से अत्यधिक है। केवल हिंदूधर्म के विभिन्न संप्रदायों और पन्थों की साधना में सिद्धि प्राप्त करके ही वे तृप्त नहीं हुए, अपितु मुसलमान एवं ईसाई धर्मों की साधना में भी उन्होंने सिद्धि प्राप्त की। प्रत्येक धर्ममतानुसार साधना करके अंतिम सिद्धि प्राप्त करते हुए उन्होंने इस अनुभूतिसिद्ध सत्य की घोषणा की कि "जितने मत हैं, उतने ही मार्ग हैं—लक्ष्य हैं एक मात्र भगवान्।" उन्होंने और भी कहा—"सब सियारों की पुकार एक है।" यानी अंतिम ध्येय सर्वोच्च लक्ष्य को प्राप्त कर लेने पर सभी धर्ममतावलंबी पुरुषों के मुख से एक ही सत्य प्रकट होता है।

षोड़शीपूजा में साधनायज्ञ की पूर्णाहुति हो चुकने के बाद (संभवतः १८७४ ई० में) श्रीरामकृष्ण के मन में ईसाई धर्म के विषय में जानने की इच्छा हुई। उन दिनों शंभुचरण मल्लिक नाम के एक भक्त आकर उन्हें बँगला में बाईबिल पढ़कर सुनाते थे। एक दिन श्रीरामकृष्ण दक्षिणेश्वर मंदिर के निकट स्थित यदु मल्लिक के उद्यानगृह में घूमने गये। उद्यानगृह के बैठकखाने की दीवार पर 'मैडोना या मरियम की गोद में बाल ईसा' की तस्वीर टँगी थी। उसे देखते हुए श्रीरामकृष्ण गम्भीर ध्यान में मग्न हो गये। उन्होंने अनुभव किया कि चित्र जीवन्त और ज्योतिर्मय हो उठा है। उनके भीतर ईसा के प्रति भक्ति उमड़ आयी और उनका हृदय आप्लावित हो गया। उन्हें दर्शन हुआ—गिरजाघर में धूप दीप जल रहा है और ईसाई भक्त-साधक उपासना कर रहे हैं। यह दिव्य अनुभूति तीन दिन तक जारी रही। चौथे दिन जब वे दक्षिणेश्वर उद्यान में टहल रहे थे उस समय उन्होंने देखा कि एक सौम्य दर्शन, तेजस्वी पुरुष उनकी ओर एकटक देखते हुए बढ़े चले आ रहे हैं। श्रीरामकृष्ण के अंतःकरण से ध्वनि उठी—'ये ही ईसा हैं। ईसा—जो जीवों का दुःख-कष्टों से उद्धार करने के लिए अपने हृदय का रुधिर बहा गये। ये ही वे परमयोगी, प्रेमिक, ईश्वर पुत्र हैं।' और देखते ही देखते, प्रभु ईसा उनके समीप आ पहुँचे और उन्हें गाढ़ आलिंगन देते हुए उनमें समा गये। श्रीरामकृष्ण गंभीर समाधि में मग्न हो गये। ईसा के अवतारत्व के संबंध में उन्हें संदेह नहीं रहा।

इतना ही नहीं, 'श्रीरामकृष्ण—वचनामृत' के प्रणेता श्री महेंद्रनाथ गुप्त अथवा मास्टर महाशय आदि अंतरंग भक्तों के समीप श्रीरामकृष्ण ने स्पष्ट कहा है—"मैं ही पूर्व युग में ईसा के रूप में अवतीर्ण हुआ था।"

दक्षिणेश्वर में ईसा मसीह के चेहरे के सम्बन्ध में एक बार भक्त शिष्यों के बीच चर्चा चल रही थी। नरेन्द्र, शरत् आदि युवक भक्त उपस्थित थे। किसी ने कहा कि ईसा यहूदी थे अतः उनकी नाक यहूदियों की तरह नुकीली रही होगी। श्रीरामकृष्ण बोल उठे—"किन्तु मैंने तो उनकी नाक तनिक दबी हुई सी देखी थी।" श्रीरामकृष्ण के देहावसान के कई वर्ष बाद शरत् महाराज (स्वामी सारदानन्द) जब पाश्चात्य देशों में गये तो उन्हें एक जगह किसी ग्रन्थ में ईसा मसीह की आकृति के सम्बन्ध में कुछ तथ्य प्राप्त हुए। उनमें एक जगह उल्लेख था कि ईसा की नाक तनिक दबी सी थी। उन्हें श्रीरामकृष्ण के दर्शन का स्मरण हुआ और हृदय उनके प्रति आश्चर्य युक्त श्रद्धा भाव से पूर्ण हो गया।

श्रीरामकृष्ण की महासमाधि के पश्चात् शीतकाल में (१८८६ दिसम्बर) नरेन्द्र आदि नौ-दस अंतरंग युवक शिष्य बाबूराम के यहाँ आँटपुर गये हुये थे। उस समय सभी के मन में वैराग्य की तीव्र अग्नि धधक रही थी। वे रात को एक वृक्ष के नीचे धूनी जलाकर बैठते और ध्यान-भजन-अध्यात्मचर्चा इत्यादि में मग्न हो जाते। एक रात नरेन्द्र ने ईसा मसीह का जीवन प्रसंग छेड़ा। वे भावविभोर हो आवेग पूर्ण वाणी में ईसा के अनुपम त्याग, वैराग्य, पवित्रता एवं प्रेम का वर्णन करने लगे। सब मंत्रमुग्ध हो सुनने लगे। इस प्रकार बोलते हुए उन्होंने त्याग, तपस्या, आत्म निवेदन, कष्ट सहिष्णुता इत्यादि से मंडित संन्यासी-जीवन का आदर्श सब के हृदय पर दृढ़ रूप से अंकित कर दिया। सब के हृदय में आदर्श संन्यास-जीवन स्वीकारने की प्रेरणा जाग उठी और उन्होंने उसी समय संन्यास ग्रहण करने का संकल्प कर लिया। बाद में वह दिव्य भाव का आवेश उतर जाने पर उन्हें पता चला कि वह ईसा के आविर्भाव की प्राक्संध्या थी। सभी बड़े विस्मित हुए। वहाँ से वराहनगर मठ लौट कर कुछ दिन बाद उन्होंने संन्यास ग्रहण किया। तो इस प्रकार इस पवित्र संध्या का श्रीरामकृष्ण-संन्यासी-संघ के इतिहास में एक विशेष महत्वपूर्ण स्थान है। इसी पावन स्मृति को हृदय में पुनरुद्दीप्त करने के लिए रामकृष्ण संघ में सर्वत्र यह उत्सव अत्यन्त श्रद्धापूर्वक मनाया जाता है।

इस प्रकार हमारे संघ के जन्मकाल से ही ईसा-मसीह ईश्वरावतार के रूप में सम्मानित और पूजित होते आये हैं। उनकी वाणी में हमारे सनातन धर्म के तत्वों की ही प्रतिध्वनि सुनने को मिलती है।

स्वामी विवेकानन्द कहते हैं :—

भगवान अनन्त भावमय हैं—अनन्त स्वरूप हैं। सभी अवतार उस एक ही अनन्त ईश्वर की अभिव्यक्तियाँ हैं। इसलिए हम नाजरथ निवासी ईसा को सम्मान देंगें। उन्हीं को नहीं—जो उनके पहले आविर्भूत हुए, जो उनके पश्चात् आए और भविष्य में आएँगे उन सबके प्रति हम श्रद्धा-सम्मान अर्पित करेंगे। हमारे सनातन धर्म की वाणी है—'एक सद् विप्रा बहुधा वदन्ति।' विभिन्न देशीय, विभिन्न-जातीय, विभिन्नमतावलम्वी सभी देवमानवों को प्रणाम !

जीवनी

पार्श्वभूमि :—

ईसा के जीवन एवं कार्य के सम्बन्ध में बहुत कम जानकारी मिलती है। यहूदी धर्मग्रंथों में 'मसीअह' शब्द का अर्थ है पवित्र आत्मा द्वारा अभिषिक्त (नियुक्त) या युवराज। ग्रीक (यूनानी) भाषा में इसका पर्यायवाची शब्द है 'ख्रिस्तोस।' इसी पर से ईसा मसीह (यीशू) को यूरोप में जीजस ख्राइस्ट कहा जाता है।

ईसा प्राच्य देशीय थे—एशियावासी थे इसीलिए उनकी भावधारा हम प्राच्य देशवासियों को परिचित प्रतीत होती है। एशिया के सुदूर पश्चिमी कोने में फिलिस्तीन या पैलेस्टाइल प्रदेश है। यह यहूदियों की वासभूमि है। प्रायः दो हजार वर्ष पूर्व इस प्रदेश पर रूमी (रोमन) सम्राट् (तिबेरियस) का अधिकार था।

यहूदियों का धर्म मूसा आदि महापुरुषों की स्मृतियों के आधार पर रचा गया है। उनके धर्मग्रंथ में मुख्यतः

मूसा द्वारा घोषित विधियों तथा नबियों की शिक्षाओं का संग्रह है।

उन दिनों यहूदियों में मुख्यतः दो श्रेणियों के लोग पाये जाते थे। फैरिसी और सैडयूसी। फैरिसी लोग धर्मान्ध, कट्टर, रूढ़िवादी और कर्मकांडी थे। वे मूसा की संहिता का अक्षरशः पालन करते थे पर उसके भाव को ग्रहण नहीं करते थे। वे कपट, अनैतिकता, संकीर्णता आदि दोषों से ग्रस्त थे किन्तु स्वयं को बड़े धार्मिक समझते थे—यूनानी, रूसी आदि लोगों को तो वे अत्यंत घृणा की दृष्टि से देखते थे।

सैडयूसी लोग सुधारक थे। सांसारिक उन्नति के लिए वे व्यापार, नौकरी आदि द्वारा धनोपार्जन में व्यस्त रहते थे। ग्रीक-रोमन सभ्यता की प्रबल मोहनी उनपर पड़ी हुई थी। उनका झुकाव पूरे पूरे ग्रीक या रोमन बनने की ओर था।

इसके अलावा पुजारियों और शास्त्रियों के विशिष्ट वर्ग थे जिन्हें विशिष्ट अधिकार प्राप्त थे।

ईसा का जन्मकाल यहूदी जाति का पतनकाल था। उस समय लोगों की विचारशक्ति शिथिल हो गयी थी। वे अतीत के स्वप्नों के नीड़ में विश्राम करने लगे थे। जीवनप्रवाह में मानो रुकावट आ गयी थी। रोमनों के संरक्षण में हेरोद नामक एक क्रूर और संशयी राजा सम्पूर्ण फिलिस्तीन पर राज्य करता था। वह अत्यन्त प्रजापीड़क और सत्तालोभी था। वह स्वयं यहूदी भी नहीं था—पर उसकी पत्नी यहूदी थी। रोमन सम्राट् को नजराने आदि देकर वह खुश रखता था। अपने देश की पराधीनदशा एवं रोमियों के अत्याचार से धार्मिक यहूदी बड़े दुखी थे। वे उत्कंठित हो बड़ी व्याकुलता के साथ धर्मग्रंथ में प्रतिज्ञात प्रेषित की प्रतीक्षा कर रहे थे—वह प्रेषित था मसीह जो उन्हें मुक्त करेगा। और ऐसे समय योहन बपतिस्ता (जौन द बैपटिस्ट) और ईसा मसीह का जन्म हुआ।

योहन बपतिस्ता मानो ईसा के आगमन की वार्ता सुनाने और उनका मार्ग बनाने आये थे। तीस वर्ष की उम्र में वे यरदन (जॉर्डन) नदी के आसपास घूमते हुए उपदेश व दीक्षा देने लगे। उनके उपदेश की मुख्य ध्वनि थी—"स्वर्ग का राज्य (धर्मस्थापना का समय) निकट आ गया है। अपने पापों के लिए पश्चाताप करो। चित्त को शुद्ध करो।" उनकी सादगी, निष्किंचनता, त्यागशीलता और पवित्रता के कारण आम जनता उन पर श्रद्धा रखती थी और उन्हें 'पैगंबर' कहती थी। पर वे कहते—"मैं ईश्वर का पुत्र नहीं हूँ, ईश्वर पुत्र तो मेरे पीछे आ रहा है। मैं तो तुम्हें जल से दीक्षा देता हूँ। पर वह मुझसे अधिक शक्तिशाली है। मैं उसके जूतों के फीते तक बाँधने लायक नहीं हूँ।"

योहन स्पष्टवक्ता थे। कुल-जाति-पांडित्य आदि के मिथ्या अभिमान पर वे तीव्र वाक् प्रहार करते थे। इससे फैरिसी, सैड्यूसी, पुजारी आदि उनसे नाराज रहते थे। स्पष्टवादिता के कारण हेरोद के पुत्र दूसरे हेरोद के शासन काल में उन्हें कारावास और मृत्युदंड भोगना पड़ा।

जन्म :—

योहन के जन्म के कोई छह महीने बाद ईसा का जन्म हुआ। ईसा की माता मरियम (मारिया) फिलिस्तीन के गलीलिया या गैलिली तहसील के नाजरेथ ग्राम की रहनेवाली थी। उनकी सगाई गलीलिया में बसे योसेफ या यूसुफ नामक बढ़ई से हुई थी। विवाह के पूर्व ईश्वरीय प्रभाव से मरियम संतान संभवा हो गयी। फिर भी ईश्वरीय संकेत से यूसूफ ने उन्हें ग्रहण किया। ईसा के जन्म के पहले यूसुफ मरियम को ले येरूसालेम के समीप बेथलेहेम गाँव में जो उनका मूल ग्राम था—चले आये। वहाँ वे दोनों एक बार मर्दुमशुमारी (जनगणना) के लिए गये हुए थे ऐसे समय एक सराय में ईसा का जन्म हुआ। वह २४ दिसंबर ई० पूर्व सधह की रात थी।

इधर राजा हेरोद ने ज्योतिषियों से सुना कि उसका शत्रु बेथलेहेम में उत्पन्न हो चुका है। उसने सशंक होकर गाँव के दो साल से कम उम्रवाले सभी बच्चों को मरवा डाला। युसूफ को इस हुक्म की तामील होने से पहले

इसका पता चल गया और वे पत्नी तथा नवजात शिशु पुत्र को लेकर मिश्र देश भाग गये। हेरोद के मरण के बाद वे नाजरेथ में आ बसे। बड़े होने पर ईसा ने पिता से बढ़ई का धंधा सीख लिया और लगभग तीस साल की उम्र तक वे वहीं काम करते रहे।

बचपन :—

ईसा के जीवन के प्रथम तीस वर्ष की अधिक घटनाएँ नहीं मिलती। बारह साल की उम्र में बालक ईसा अपने माता-पिता और छोटे भाई-बहनों के साथ पेसाह पर्व पर येरुसालेम गया था। पूजा आदि के बाद सारा परिवार लौट चला पर ईसा उनमें नहीं था। यह सोचकर कि वह दूसरे दल के साथ आ रहा होगा, माता-पिता ने दिनभर ध्यान नहीं दिया। परन्तु शाम को भी वह नहीं दिखाई दिया तब माता-पिता येरुसालम वापस लौटे। उन्होंने बालक ईसा को मंदिर मे शास्त्रियों के साथ धर्मचर्चा करते हुए पाया। सभी आश्चर्य से दंग रह गये। इसके बाद के अठारह वर्षों के जीवन का कोई उल्लेख नहीं मिलता।

दीक्षा तथा तपश्चर्या :—

करीब तीस वर्ष की उम्र में ईसा ने औजार छोड़ दिये और योहन से बपतिस्मा (दीक्षा) ग्रहण की। योहन ने उन्हें देखते ही पहचान लिया और कहा—"मैं तुम्हें क्या दीक्षा दूँ ? तुम ईश्वर पुत्र हो। तुम्हीं मुझे पावन करो।" किंतु ईसा बोले "सभी बातें धर्मानुशासन के अनुसार ही होनी चाहिए।" दीक्षा ग्रहण के पश्चात् ईसा ने एक पर्वत पर रहते हुए आध्यात्मिक साधना, तपश्चर्या की। और सिद्धिलाभ करके, वे संसार के कल्याण के लिए नीचे उतरे। उनके हृदय में दृढ ईश्वरनिष्ठा, प्रबल आत्मविश्वास था। उनके मुखमंडल पर दिव्य तेज था और वाणी में अपार शक्ति।

प्रचार कार्य—

यहाँ से ईसा के जीवन का दूसरा पर्व शुरु हुआ। उन्होंने जगह-जगह घूमते हुए ईश्वरीय सन्देश का प्रचार करना आरंभ किया। उनका उपदेश सरल किंतु ओजस्वी भाषा में होते। वे अरामेयिक या इब्रानी की बोलचाल की भाषा में उपदेश देते। उसमें व्यावहारिक जीवन के दृष्टांत भरे होते। 'अपने किये कुकर्म अथवा पाप के लिए पश्चात्ताप करो, जीवन को पवित्र बनाओ, कर्मकांड ही धर्म नहीं है, ईश्वर पर प्रेम-भक्ति करो, यह जीवन कुछ नहीं, इससे उच्च कुछ और है-यह उनके उपदेशों को प्रधान स्वर था।

वे लोगों को समझाते कि शास्त्रों पर जमी जड़ अंध श्रद्धा छोड़ उनका मर्म ग्रहण करो, पाखंडीपना, ढोंग, कपट, स्वार्थ और अहंकार को छोड़ सच्चे दिल से ईश्वर को प्यार करो। उन्होंने प्राचीन यहूदी धर्मशास्त्र (मूसा-संहिता) पर नया प्रकाश डाल यथार्थ मर्म प्रकट कर दिखाया। वे कहते—"मैं मूसा के नियमों को नष्ट करने नहीं, बल्कि परिपूर्ण करने आया हूँ।"

किन्तु कट्टर रूढ़िवादियों को यह ठीक नहीं जंचता था।

मन्दिर शुद्धि :—

इन दिनों एक बार पेसाह पर्व के उपलक्ष में ईसा येरुसालेम आये। मंदिर का एक हिस्सा पुजारियों ने दुकानदारों को किराये पर दे रखा था। इसलिए वहाँ बाजार का-सा वातावरण बन गया था—लेन-देन, मोल-जोल, छल-कपट, झगड़ा-गोलाहल ! भगवान के मंदिर में, तीर्थस्थान में भी यही दुनियादारी ! ईसा से यह न सहा गया। उन्होंने उन लोगों को प्रहार करते हुए बाहर खदेड़ा। उनकी उग्रमूर्ति देख कर सभी भयभीत हुए। पर पुजारियों को बड़ा क्रोध आया। उन्होंने पूछा—"यह तुमने किस अधिकार से किया ?" ईसा बोले—"यदि तुम इस मंदिर को तोड़ डालो तो तीन दिन में मैं नया मंदिर बना सकता हूँ।" वास्तविक में यहां पर मंदिर शब्द से ईसा ने अपना देहमंदिर अभिप्रेत था किंतु स्थूल बुद्धि के पुजारियों ने इसे देवमंदिर के प्रति घोर तिरस्कार का सूचक समझा और यह उनके विरुद्ध लगाये जाने वाले अभियोगों में एक महत्व का अभियोग बना।

विरोध वृद्धि :—

शुरू में ईसा यहूदिया तहसील में उपदेश देते थे। उन्हें कुछ शिष्य भी मिले। वे लोगों के हृदय में नव-जीवन की प्रेरणा देते थे। वे प्राचीन कर्मकांड आदि का बहुत ज्यादा ख्याल नहीं करते थे। व्रत उपवास शब्बाथ (विश्रांतिदिन) आदि का पालन नहीं करते थे। गैर यहूदियों और नीच मानी जानेवाली जातियों के लोगों से भी बिना भेद-भाव के मिलते थे। उनके हाथ का खाते-पीते थे। फिर ढोंगी फैरिसी, शास्त्री, पुजारी आदि के बारे में ईसा कड़ी, फटकार भरी भाषा का प्रयोग करते थे। इस कारण उनके प्रति इन लोगों का रोष दिनोंदिन बढ़ता गया।

यहूदिया में राजा का और पुजारियों का विरोध बढ़ता देख ईसा ने गैलेलिया जाना उचित समझा। वे सैमारिया होते हुए गैलेली गये। सैमारिया को यहूदी लोग इतना अपवित्र मानते थे कि वे उस रास्ते कभी नहीं जाते थे। पर ईसा में यह भेदभाव नहीं था। उन्होंने सैमरिया में भी उपदेश और दीक्षा प्रदान की तथा पतितों और रोगियों का जीवन परिवर्तित किया। लोग उन्हें प्रेषित मानने लगे।

ईसा कहते कि मैं परमेश्वर का पुत्र हूँ—स्वर्ग का राज्य पृथ्वी पर प्रतिष्ठित करने आया हूँ।

सैमारिया होते हुए ईसा गैलेली के अपने गाँव नाजरथ गये। वहां भी उन्होंने परमेश्वर का सन्देश सुनाया। किन्तु लोग यह सहन नहीं कर सके कि मारिया और यूसुफ का बेटा अपने को 'ईश्वर का पुत्र' कहे। वे उन्हें मारने ही दौड़े।

फिर ईसा कैपरनाउम चले गये। उनका सब से पहला शिष्य शिमौन या साइमन उर्फ पिटर (पतरस) इसी गाँव का निवासी था। यहाँ रहते हुए उन्होंने लोगों को उपदेश दिया।

कुछ महीने बाद किसी पर्व के समय ईसा फिर येरुसालेम गये। उनकी ख्याति काफी फैल चुकी थी और उनकी दया प्राप्त करने के लिए कई शोक-ताप-रोग से पीड़ित व्यक्ति उनके पास आने लगे थे। विश्रांति दिन को भी ईसा दया परवश हो तापितों की आधिव्याधि का निवारण करते। कहते—"परमेश्वर दया का कार्य प्रतिक्षण किया करता है। ऐसे कार्यों के लिए ईश्वरपुत्र पर कोई प्रतिबन्ध नहीं हो सकता।" फिर कोई सामने आकर पाप के लिए पश्चाताप करता तो ईसा कहते—"जा, तेरे सब पाप माफ हो चुके।" पुजारी सोचते कि यह घोर ईश्वर निंदा है। उनका द्वेष दिनोंदिन बढ़ता जाता था।

इस प्रकार ईसा का उपदेश कार्य चला। धीरे-धीरे उनके शिष्यों की संख्या बारह हो गयी। ये साधुओं की तरह रहते थे।

लोगों के दुःख-कष्टों से विह्वल हो उनके कल्याण के लिए ईसा सतत परिश्रम करते थे किन्तु उन्हें इस बात का खेद होता कि लोगों में निर्धनता, व्याधि आदि से मुक्ति होने एवं ऐहिक सुखोपभोग पाने की तो तीव्र लालसा है किन्तु पाप-विकार आदि से मुक्त होने एवं दिव्य अपार्थिव आनन्द पाने की कोई इच्छा नहीं।

इधर अधिकारियों, पुजारियों, शास्त्रियों आदि को ईसा के आचरण में राज्यद्रोह, धर्मद्रोह, नास्तिकता, निर्लज्जता और आत्मश्लाघा की गंध आती थी।

पतित या पथभ्रष्ट नर-नारियों के प्रति भी उनके हृदय में अपार करुणा उमड़ा करती। एक बार कुछ पुजारी और शास्त्रियों ने एक स्त्री को ईसा के सामने लाकर कहा कि "यह व्याभिचारिणी है—रंगी हाथ पकड़ी गयी है। इसे मूसा के नियमानुसार पत्थरों से मारना चाहिए। तुम्हारी क्या राय है इस विषय में?"

ईसा ने कहा "तुममें से जो नितांत निष्पाप हो वही पहला पत्थर मारे।" इतना कहकर वे जमीन की ओर दृष्टि किये शांत बैठे रहे।

सुनकर लोग एक-एक करके उठे और चल दिये। स्त्री अकेली रह गयी। तब ईसा ने उससे कहा—"बहन अब तू अपने घर चली जा और आगे कभी पाप न करना।"

पंडितगण ईसा को नहीं समझ सके। इसे उन्होंने औद्धत्य समझा। उनका द्वेष और बढ़ता ही गया।

अवतारों का कार्यकलाप सामान्य मानव, विषयासक्त मानव नहीं समझ सकते। (अवजानन्ति मां मूढा मानुषीं तनुमाश्रितम्) वे उसकी अवज्ञा ही करते हैं। यहाँ तक कि उनकी माता और भाई तक सोचते कि ईसा का दिमाग खराब हो गया है या उसे भूतबाधा हो गयी है।

आत्मनिष्ठ ईसा अपने स्वरूप में अवस्थित हो उपदेश देते। वे अजर-अमर सनातन पुरुष के रूप में स्वयं का परिचय देते। पर सुननेवाले तो उन्हें एक साढ़े तीन हाथ के मनुष्य के रूप में ही देखते। इसलिए जब वे कहते "तुम मुझे ढूंढ़ नहीं सकते। जहाँ मैं रहता हूँ वहाँ तुम पहुँच नहीं सकते।" तो कट्टर लोग समझते कि यह भागना चाहता है, छिपना चाहता है। जब वे कहते कि "मैं यहूदियों के पूर्वज (अब्राहम) से भी पहले से विद्यमान हूँ" या "मै परमेश्वर का पुत्र हूँ—तो लोग उन्हें झूठा नास्तिक और दांभिक समझते।

यहां तक कि सदा रात दिन उनके साथ रहनेवाले उनके शिष्य भी उन्हें पूरा पूरा नहीं समझ पाते। उनके मन में यह विचार छिपा हुआ था कि कभी न कभी ईसा यहूदियों का राज्य स्थापन करेगा। वह राजा बनेगा और हम उसके दाहिने-बाएँ बैठेंगे।

अंतिम पर्व :—

पुनः पेसाह पर्व का समय आ पहुँचा और वे अंतिम बार येरुसालेम को रवाना हुए। फैरिसी और पुजारी लोग उनके दुश्मन बन चुके थे और राजद्रोह का इल्जाम लगाकर उन्हें मरवा डालने के लिए उत्सुक वे हेरोद के आदमियों से जा मिले थे।

पेसाह पर्व के कोई छह दिन पहले ईसा और उनके बारह शिष्य येरुसलेम के समीप बेथैनी गाँव में ठहरे। वहाँ भक्तों ने उनकी पूजा आदि की। 'यहूदियों के राजा ईसा की जय' आदि नारे लगाये। इससे उनके शिष्य येहूदा मत्सर से जल-भुन उठा और फैरिसियो और पुजारियों से जा मिला। अच्छा सा इनाम पाने की शर्त पर ईसा को पकड़वा देने का वचन दिया।

ईसा समझ गये कि अब उनका अन्तकाल पास आ गया है। वे सूचित भी करते कि मानवजाति के प्रति मेरा जो प्रेम है उसकी परीक्षा मुझे मृत्यु द्वारा देनी होगी। वे दिन रात ईश्वर चिन्तन में बिताने लगे।

अंतिम भोज :—

वृहस्पतिवार शाम को वे अपने बारह शिष्यों सहित येरुसालेम में ही एक भक्त के यहां भोजन के लिए गये। भोजन करते हुए उन्होंने कहा भी 'तुममें से एक शिष्य मुझे पकड़वाएगा।' यहूदा ने कहा, 'गुरुजी, मैं तो नहीं हूँ।' ईसा ने कहा, 'तुमने कह दिया।'

भोजन के समय ईसा ने रोटी ली, आशीष माँगकर तोड़ी और शिष्यों को देते हुए कहा—'लो खाओ, यह मेरी देह है।' फिर दाखरस (अंगूरी) का कटोरा उठाया और प्रभु का स्मरण कर शिष्यों को देते हुए कहा—'लो पिओ, यह मेरा रक्त है जो मनुष्य जाति की पापक्षमा के लिए बहाया जा रहा है।

भजन गाने के बाद ईसा शिष्यों सहित जैतुन पर्वत पर गये। वहाँ उन्होंने कहा, 'आज रात को तुमलोगों का मेरे विषय में पतन होगा, क्योंकि धर्मशास्त्र का यही लेख है। "मैं चरवाहे पर आघात करूँगा और झुंड की सब भेड़ें बिखर जाएँगी।" इसपर उनका पट्टशिष्य पतरस या पिटर बोल उठा, 'प्रभो चाहे सब दगा दे जाएँ पर मैं कभी आपको दगा नहीं दूंगा। मेरा पतन नहीं होगा।' ईसा बोले—'इसी रात को मुरगे के बांग देने के पहले तू तीन बार मेरा साथी होने से इनकार करेगा।'

फिर ईसा गतसमने नामक बाग में आये। व्यथित हो बोले—'मैं अत्यन्त व्याकुल हूँ। मेरे प्राण मानो निकल रहे हैं। तुम यहीं ठहरो और मेरे साथ जागते रहो।' फिर वे थोड़ा आगे बढ़कर प्रार्थना करने लगे—

'मेरे पिता, सम्भव हो तो यह दुख का प्याला मुझसे हटा ले। तो भी जैसा मैं चाहता हूँ वैसा नहीं वरन् जैसा तू चाहता है वैसा हो।' फिर शिष्यों के पास आकर देखा तो वे सो रहे थे। उन्होंने उन्हें जगाते हुए कहा 'तुम सब जागते रहो और प्रार्थना करते रहो कि परीक्षा में न पड़ो। आत्मा तो तैयार है पर शरीर दुर्बल है।' पर यह भीरुता-सा भाव क्षणिक था।

वे फिर प्रार्थना करने लगे—'प्रभो, तेरी इच्छा पूर्ण हो।' शिष्य फिर सो गये। ऐसा तीन बार हुआ। तीसरी बार ईसा बोले—'अब भी सो रहे हो! देखो, मेरा पकड़नेवाला निकट आ गया।'

गिरफ्तारी :—

ईसा बोल ही रहे थे कि यहूदा हथियार बन्दटोली के साथ आ पहुँचा। टोली के सरदार से उसने कहा, 'मैं/जिसे चूमूँ उसे तुम पकड़ लेना।' इतना कहकर उसने ईसा के समीप आकर चुम्बन किया। ईसा ने कहा, 'मित्र तुम जिस काम के लिए आये, उसे कर लो।' तब आयी हुई टोली ने ईसा को बांध लिया। इतने में पिटर जाग उठा और जोश में तलवार खींचकर महापुजारी के नौकर पर झपटा। पर ईसा ने कहा, "अपनी तलवार म्यान में रख!.....मैं अपनी रक्षा के लिए बारह लाख फारिश्तों को बुला सकता हूँ; पर मैं इस प्रकार बचना नहीं चाहता। मेरी मृत्यु ही मेरी सेवा है। धर्मशास्त्र का लेख पूरा हो।"

फिर उन्होंने भीड़ की ओर मुड़कर कहा—'क्या मैं कोई डाकू हूँ जो तुम मुझे इस तरह पकड़ने आये! मैंने रोज मंदिर में बैठकर प्रवचन दिये पर तुमने मुझे नहीं पकड़ा। यह सब इसलिए हुआ कि नबियों का लेख पूरा हो।"

तब तक सब शिष्य ईसा को छोड़कर भाग चुके थे।

मुकदमा—

पकड़नेवाले ईसा को महापुरोहित काइफा के पास विचार के लिए ले गये जहाँ धर्म महासभा के शास्त्री और धर्मवृद्ध गण उपस्थित थे। पतरस भी दूर-दूर ईसा के पीछे चलते हुए आया और अन्त देखने के लिए महापुजारी के आंगन में कर्मचारियों के साथ बैठ गया। ईसा पर आरोप लगाया गया। महापुजारी ने पूछा, 'क्या तू ईश्वर का अभिषिक्त पुत्र (मसीह) है?' ईसा ने कहा "आपके शब्द सच्चे हैं।"

सुनते ही महापुजारी और सभा के लोग चिल्लाने लगे। वे उन्हें मारने और अपमानित करने लगे। इसी समय महापुजारी की सेविका ने पतरस को देखकर कहा, 'यह ईसा का साथी है।" पर पतरस ने कहा, "मैं इस आदमी को नहीं जानता।" इस प्रकार उसने और एक बार इनकार किया। फिर तीसरी बार जब उसने इनकार किया तो उसी समय मुरगा बांग उठा। अब पिटर को ईसा के शब्द का स्मरण हुआ और वह बाहर जाकर फूट-फूट कर रोने लगा। देहबुद्धि, स्वयं को बचाने की प्रवृत्ति, कितनी भयंकर होती है।

राज्यपाल पिलतुस के समीप—इस सभा को मृत्युदंड देने का अधिकार नहीं था। इसलिए वे लोग ईसा को बाँधकर सूबे (राज्यपाल) के समीप ले आये। रास्ते में उनसे अत्यन्त निर्दयता का व्यवहार किया गया।

यहूदा का पश्चाताप—यह सब देखकर यहूदा को बड़ा पश्चाताप हुआ। इनाम(रिश्वत) की रकम वापस देते हुए वह ईसा को छुड़ाने के लिए सभा के सामने गिड़गिड़ाने लगा पर उसकी बात किसी ने नहीं सुनी। तब यहूदा को इतना शोक हुआ कि उसने लले में फंसा डालकर आत्महत्या कर ली।

रोमी राज्यपाल पिलुतुस की अदालत में पुजारियों ने ईसा के विरुद्ध गवाही दी पर ईसा ने अपनी सफाई में एक शब्द भी नहीं कहा।

सूबे के यह पूछने पर कि 'क्या तुम स्वयं को यहूदियों का राजा कहते हो?' ईसा ने समझाया कि "मेरा आशय इस पृथ्वी के भौतिक राज्य से नहीं बल्कि प्रभु के आध्यात्मिक राज्य से है। मैं सत्य का साथी हूँ। सत्य

के लिए मेरा जन्म हुआ है और सत्य धर्म का मैं राजा हूँ।"

सूबा यहूदियों की ओर मुड़ा। उसे ईसा में कोई दोष नहीं दिखाई दिया। पर जनता को महापुजारी आदि ने बहका दिया था। 'इसे सूली पर चढ़ाओ' कहकर वे शोर मचाने लगे। पसह पर्व के उपलक्ष में जनता की इच्छा के अनुसार सूबा एक बंदी को मुक्त कर सकता था। इस प्रथा के अनुसार सूबे ने ईसा को छोड़ देना चाहा पर यहूदी पुकार उठे—'इसे नहीं। बरअब्बा को छोड़ो।' बरअब्बा एक लुटेरा था।

लोगों को खुश करने के लिए सूबे ने ईसा को काँटे का मुकुट पहनवाया, कोड़ों से पिटवाया, अपमान-तिरस्कार किया और छोड़ देना चाहा। पर लोगों के सिर पर खून सवार था। वे 'ईसा को सूली पर चढ़ाओ' के नारे लगाते रहे। तब सूबा घबड़ाया। उसने जल से हाथ धोते हुए कहा—'इस मनुष्य की मृत्यु के लिए मैं दोषी नहीं। तुम्हीं जानो। और उसने ईसा को सलीब या क्रूस पर चढ़ाने के लिए जल्लादों के हाथ सौंप दिया। सलीब पर उसने ग्रीक, लैटिन और हिब्रू में दोषपत्र लिखकर लगवाया—'ईसा नाजरी, यहूदियों का राजा'। लोगों के आपत्ति करने पर पिलतुस ने कहा, 'मैंने जो लिख दिया, सो लिख दिया।'

क्रूसारोहण—लकड़ी का एक बड़ा सलीब (क्रूस) उठाकर ईसा जल्लादों के साथ वधभूमि की ओर चले। उनका उपहास करती, उन्हें मारती, अपमानित करती और उनपर थूकती हुई लोगों की भीड़ पीछे-पीछे चली। दोनों हाथों और दोनों पैरों में बड़ी-बड़ी कीलें ठोंककर सलीब खड़ा किया गया। उसी दिन ईसा के क्रूस के दोनों ओर दो चोरों को क्रूस पर चढ़ाया गया।

तो लोगों ने लज्जास्पद, दुःखदायक, निर्दय व्यवहार किया पर ईसा ने उनके लिए प्रार्थना की—"हे प्रभो, तू इन्हें क्षमा कर। ये नहीं जानते कि वे क्या कर रहें हैं।"

कई घंटों तक तीव्र वेदना सहकर तीन बजे ईसा एक बार जोर से पुकार उठे—'राली, राली लमा सबक्तनी ?' यानी 'मेरे प्रभु, मेरे प्रभु तूने मुझे क्यों छोड़ दिया ?' इसके बाद फिर एक बार प्रभु को पुकार कर कहा, 'प्रभु, अपनी आत्मा मैं तुझे सौंपता हूँ।' और अपने प्राण छोड़ दिये। यह सन् ३० ई० का वसंत काल था।

उपसंहार :

ईसा के इस बलिदान का विलक्षण प्रभाव पड़ा। नवयुग का जो बीज वे बो गये थे वह धीरे-धीरे अंकुरित हुआ, विशाल वृक्ष में परिणत हुआ। कई लोग उनके उपदिष्ट धर्म के अनुयायी बने।

क्रूसारोहण के पूर्व एक बार ईसा ने शिष्यों को बुलाकर कहा था—"मेरा पंथ प्रेम का पंथ है। तुम इसे अपनाओ तो तुम्हारा कल्याण होगा। जैसा मैं तुम पर प्रेम करता हूँ वैसा तुम एक दूसरे पर प्रेम करो। तुम मेरे उपदेशों के अनुसार चलो तो मेरे समान बनोगे।"

व्यक्तित्व :

ईसा मसीह का व्यक्तित्व अत्यंत प्रभावशाली था। उनका त्याग, वैराग्य एवं पावित्र्य अनुपम था। वे अत्यंत उदार, नम्र और और अहंशून्य थे। दया, क्षमा, करुणा, परोपकार, प्रेम सहानुभूति आदि अगणित सद्गुणराशियों से उनका चरित्र विभूषित था। दीन-दुखियों, पापियों और पतितों के उद्धार के लिए उन्होंने अपने प्राणों की बाजी लगा दी। वे जनसाधारण के साथ रहे, सब से प्रेम का व्यवहार करते रहे किंतु वे नितान्त निर्लिप्त थे। उनका मन सदा भगवान में मग्न रहता था। उनका जीवन संपूर्णतया ईश्वरनिष्ठ, ईश्वर-केंद्रित था। वे देह-गेह संसार की निन्दा-स्तुति आदि सभी के प्रति उदासीन थे। वे आदर्श संन्यासी थे।

वे प्राचीन धर्म को पुनरुज्जीवित करने आये थे। उन्होंने कट्टर शास्त्रियों की संकीर्ण व्याख्याओं से दबे शास्त्र को यथार्थ प्रकाश में लाया। वे परमेश्वर के दिव्य राज्य का संदेश मानवजाति को सुनाने आये थे।

देहधारी होते हुए भी वे विदेह थे। देहबोध उनमें नहीं था वे नित्य-शुद्ध-बुद्ध-मुक्त-स्वभाव परिपूर्ण आनन्द स्वरुप थे।

उपदेश—

गिरि प्रवचन या शैलोपदेश में उनके उपदेशों का तथा व्यक्तित्व का सारा रहस्य समाया हुआ है।

इस दिव्य संदेश वाहक के जीवन का मूलमंत्र था—यह लौकिक या पार्थिव जीवन असार है, कुछ नहीं है, अनन्त जीवन इसके परे है। उसे प्राप्त करने के लिए प्रयत्न करो। और वह दिव्य राज्य तुम्हारे भीतर ही है- अन्तर में Kingdom of heaven is within you. विराजमान है। उस पर तुम्हारा जन्मसिद्ध अधिकार है। उसकी प्राप्ति का उपाय है। चित्तशुद्धि (Be thou perfect as your father in heaven is perfect)

आत्मशुद्धि, चित्तशुद्धि पर वे बहुत बल देते थे। वे कहते—शरीर की हानि से मत डरो, आत्मा की हानि से डरो। "शुद्ध हृदय व्यक्ति धन्य हैं, वे ईश्वर का दर्शन करेंगे।" ईश्वर पर प्रेम विश्वास, त्याग, वैराग्य, अनन्यशरणागति उनके उपदेशों का मूल स्वर है, जिसे मेरे पीछे आना हो वह अपना क्रूस अपने कंधे पर उठाकर आवे। माता-पिता-पत्नी, प्राणों तक का मोह छोड़े बिना कोई मेरा शिष्य नहीं बन सकता

जो इस नश्वर जीवन को बचाना चाहेगा वह अविनाशी जीवन को खोएगा। जो मेरे लिए जीवन खोएगा वह उसे पाएगा।

अनुकंपा—मैं सच्चा गड़ेरिया हूँ जो अपनी भेड़ों के लिए जान तक दे देता है...जो भेड़ें मेरे पास आकर मेरी बनी हैं वे मेरी आवाज को पहचानेगी। और मैं अपने प्राण तक देकर उनकी रक्षा करूँगा। जो मेरी नहीं हैं वे मेरे पीछे नहीं आएँगी।

"तुम ईश्वर की संतान हो—दिव्यस्वरूप हो। भोगवासनाओं के पंक में मत डूबे रहो। पश्चाताप करो। ईश्वर की शरण लो। प्रभु को अपने सारे हृदय, सारी बुद्धि, सारी आत्मा से प्यार करो।" यही उनकी सब से मुख्य आज्ञा है। ●

सद्य प्रकाशित नवीन प्रकाशित

स्वामी अभेदानन्द प्रणीत

मृत्यु के पार

मृत्यु होने पर मनुष्य कहाँ जाता है ? किस अवस्था में रहता है ? आत्मा का अस्तित्व है या नहीं? परलोक में जीव का अवस्थान किस किस प्रकार रहता है ? यह सभी जिज्ञासा आदिम युग से ही मानव मन को आन्दोलित करती रही है। इन सभी की मीमांसा स्वामी अभेदानन्द महाराज ने अपने ग्रन्थ "मृत्यु के पार" में अपनी अभिज्ञता के आधार पर की है। इहलोक के निगूढ़ रहस्यों का परिचय देते हुए उपर्युक्त प्रश्नों का प्रामाणिक उत्तर इस ग्रन्थ में उन्होंने दिया है। मानव एवं प्राणीमात्र की आत्मा का विनाश नहीं है, किन्तु जीव भाव का क्रमविकास होता है एवं मृत्यु क्रम विकास की ही प्रतिछवि है। मनुष्य जन्म-मृत्यु के मध्य विचरण करते हुए ही परम रहस्यमय निज आत्मसत्ता की उपलब्धि करता है।

डिमाई साईज, पृष्ठ संख्या १६८ : मूल्य—बीस रुपया।

प्रकाशक :

श्रीरामकृष्ण वेदान्त मठ

१९-बी, राजाराजकृष्ण स्ट्रीट

कलकत्ता-७००००६

मनुष्य का मेरुदण्ड—चरित्र

—श्री ब्रज मोहन प्रसाद सिन्हा
अस्पताल चौक, छपरा (बिहार)

स्वामी विवेकानंद ने कहा था—मानव-निर्माण ही मेरा जीवनोद्देश्य है। और मानव-निर्माण के लिए उन्होंने चरित्र-निर्माण पर जोर दिया था। उन्होंने ऐसी शिक्षा दिये जाने पर बल दिया था जो मानव निर्माणकारी और चरित्र का गठन करने वाली हो।

वस्तुतः जीवन के समस्त गुणों, ऐश्वर्यों, अक्षय कीर्तिकलापों तथा सफलता की आधार-शिला चरित्र ही है। चरित्र की सुगन्ध से ही जीवन-पुष्प अपना चातुर्दिक सौन्दर्य बिखेर कर सार्थक होता है। सच्चरित्र पुरुष विधाता की वाटिका के वैसे दिव्य पुष्प हैं जिनकी सुगन्ध कभी कम नहीं होती। चरित्रवान महापुरुष ऐसे अमर आकाश-दीप हैं जो कभी बुझते नहीं और जिनके अमित आलोक में हम अपने जीवन के जलयान को आगे ले जा सकते हैं।

चरित्र की आभा व्यक्तित्व को निखारती है। इन विषम परिस्थितियों में समाज को बचाने के लिए आदर्शात्मक चरित्र निर्माण की अत्यन्त अपेक्षा है। यह तभी सम्भव होगा जब शिक्षा प्रणाली में परिवर्तन किया जाय और उसे भारतीय परम्परा के अनुकूल बनाकर उद्योगोन्मुखी बनाया जाय, आदर्श और व्यवहार का समन्वय उपस्थित किया जाय, चरित्र-शिक्षा अनिवार्य की जाय। चरित्र जीवन का शिखा-मार्ग है। चरित्रवान व्यक्ति ही आत्मज्योतिपूर्ण होता है। वह अपने को भी द्योतित करता है और साथ ही अपने परिसर में आये हुए अन्य लोगों का भी। Character is the governing elements of life and is above genius. चरित्र जीवन में शासन करने वाला तत्त्व है और वह प्रतिभा से ऊपर है।

राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी ने कहा है "मनुष्य का चरित्र ही उसकी सबसे मूल्यवान वस्तु है। आदर्श चरित्र ही शिक्षा का केन्द्र विन्दु है और एक मात्र नैतिक शिक्षा से ही सबको शिक्षित बनाया जा सकता है। किसी मनुष्य के चरित्र की पवित्रता ही उसके जीवन की सर्व श्रेष्ठ सम्पदा है। चरित्र इच्छा शक्ति से उद्भूत है, चरित्र कर्म द्वारा निर्मित है एवं चरित्र पुनः पुनः अभ्यास द्वारा संशोधित है। जबतक धर्ममूलक चरित्र का हृदय में निवास नही होगा तब तक विश्व में सुख शान्ति और एकता की स्थापना नहीं होगी। किसी ने ठीक ही कहा है "हृदय में धर्म का निवास होने से चरित्र में सौन्दर्य का वास होगा। चरित्र में सौन्दर्य का वास होने से गृह में सामजस्य का विस्तार होगा जिससे राष्ट्र में एकता का प्रसार होगा। राष्ट्र में एकता का प्रसार होने से ही विश्व में शान्ति का संचार होगा। हमारी भारतीय संस्कृति सदैव चरित्र प्रधान रही है। भारतीय संस्कृति गौरवमय चरित्रों से गढ़ी गयी है जो चिर-परम्परागत विश्व सभ्यता का दिग्दर्शन करती रही है।

चरित्र के बिना व्यक्ति का जीवन उस दिग्भ्रान्त नाविक विहीन जहाज के समान है जो दुविधामयी स्थिति में विस्तृत सागर में डगमग कर रहा हो। श्रेष्ठ चरित्र एक खिले पुष्प की भाँति शान्ति और आनन्द का सुवास सदैव प्रसारित करता रहता है। एक प्रसिद्ध कहावत है कि बुद्धि

से विचार, विचार से क्रिया, क्रिया से प्रवृत्ति (आदतें) प्रवृत्ति से गुण एवं गुण से चरित्र का निर्माण होता है तथा चरित्र से भाग्य का निर्माण होता है। बुद्धिमान मनुष्य अपने चरित्र का निर्माण विचार, क्रिया, आदत एवं गुण के समन्वय से कर सकता है।

चरित्र की परिभाषा करते समय फ्रांस के प्रसिद्ध संत वर्नर्ड (ई. स 1091-1153) ने कहा था "दूसरों के चरित्र का चित्रण करने वाला व्यक्ति अपने ही चरित्र का चित्रण करता है। चरित्र सूचक प्राचीन शब्द आचार ही है। इस शब्द का प्राचीन प्रयोग सद् व्यवहार के अर्थ में होता था। याज्ञवल्क्य मुनि, मनु, व्यास आदि सन्तों ने इसी अर्थ में प्रयोग किया है। इस प्रकार चरित्र और आचार एक ही है। आचार का भारतीय धर्म शास्त्रों में बड़ा महत्त्व है। मनु स्मृति (१/१८९) के अनुसार आत्मानुभूति-जन्य वस्तु आचार है। कविवर मैथिलीशरण गुप्त ने सदाचार को ही स्वर्ग या मुक्ति का द्वार कहा है। सच पूछिये तो सच्चरित्रता की सीपी में ही जीवन का आवदार मोती ढलता है। डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी ने लिखा है "महाकवि टैगोर के पास बैठने मात्र से ऐसा प्रतीत होता था मानो भीतर का देवता जग गया हो" कारण जीवन की सफलता चरित्र में है। संत कबीर ने कहा था।

शीलवन्त सबसे बड़ो, सब रतन की खान।
तीनो लोक की सम्पदा रही शील में आन।

ज्ञानी ध्यानी संयमी, दाता सूर अनेक
जपिया तपिया बहुत हैं सीलवन्त कोई एक।

कबीर के अनुसार दूसरों की पीड़ा को जानने वाला, उसे हरने का प्रयास करने वाला असली साधु और इसके विपरीत वाले विधर्मी हैं।

कविकुलगुरु कालिदास ने (कुमार सम्भव में) कहा है "सभी विकार, पथभ्रष्ट होने के साधनों के रहते हुए भी जिनके चित्त विकृत नहीं होते वे ही धीर हैं। बिना सुदृढ़ चरित्र के क्या यह सम्भव है? तीर्थंकर महावीर ने कहा था कि जीवों की रक्षा करना ही धर्म है। (उनका) एक महा वाक्य है कि साधु वह है जो दूसरे की सम्पत्ति या वैभव को देख कर प्रसन्न हो तथा दुष्ट वह है जो दूसरों की विपत्ति देखकर प्रसन्न हो।

अमेरिका के राष्ट्रपति अब्राहम लिंकन से किसी ने पूछा – "महानता का सर्व प्रधान लक्षण क्या है" उन्होंने झट कहा था 'सच्चरित्रता'। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने कहा था शरीर में चरित्र ही मुख्य वस्तु है। वचन से उपदेशक और क्रियादि से कैसा ही धर्मनिष्ठ क्यों न हो यदि उसके चरित्र शुद्ध नहीं हैं तो वह लोगों में 'टकसाल' नहीं समझा जायेगा। दात्तात्रेयजी ने पृथ्वी को देखकर धैर्य और क्षमा जैसे गुणों की महत्ता समझ ली और इन दोनों गुणों को अपने चरित्र का अंग बना लिया। पाश्चात्य विचारक बेकन ने ठीक ही कहा है—'Style is the man itself'—अतः मनुष्य स्वयं अपने चरित्र का दर्पण है। चरित्र वह अनमोल रत्न है जो समाज में मनुष्य को प्रतिष्ठित करता है।

नेपोलियन बोनापार्ट की शिक्षा थी "कर्मशील और सदाचारी बनो" Be a man of action and character. अंग्रेजी कवि वेल्स ने कहा है कि वही मनुष्य वास्तव में मनुष्य है जिसका हृदय निर्दोष और पवित्र है। An honest man is noblest creation of God.

स्वामी ज्योतिर्मयानन्द जी महाराज (अमेरिका) ने कहा है कि साधारणतया मनुष्य जब अनैतिकता अविश्वास, काम-लोलुपता, क्रोध, पाखंड आदि मानसिक विकारों से ग्रसित रहता है तो उसे चरित्रहीन कहा जाता है। इसके विपरीत मनुष्य में एकाग्रता, सच्चाई, परोपकारिता, सहिष्णुता,

कर्त्तव्यनिष्ठा, नम्रता आदि महान गुणों के होने पर वह चरित्र का महान, कहलाता है और चरित्र का महान वास्तविक महान होता है।

जैनधर्म के प्रवर्त्तक 'महावीर' का कथन है कि गृहस्थ जीवन चरित्र युक्त होने पर ही देश का कल्याण होता है।

जो व्यक्ति उत्पन्न क्रोध को क्षमा से निरस्त कर देता है उसे ही पुरुषार्थ युक्त मानव कहते हैं। क्रोध को त्याग देना ही मानवता है। चरित्र विधान की इससे उत्तम विधि क्या हो सकती है? क्रोध से संमोह, संमोह से स्मरण शक्ति का ह्रास, उससे बुद्धि नाश और बुद्धि नाश के बाद सर्वनाश हो जाता है। अतएव बिना क्रोध मुक्त हुए चरित्र का निर्माण नहीं हो सकता। यही गीता का संदेश है।

महा योगी गोरखनाथ जी ने कहा है जीवन के चरित्र में सत्य ही अमृत है। इस सत्य से चरित्र निर्माण का तात्पर्य सम्पादित होता है। आदि शंकराचार्य के अनुसार चरित्रशील एवं सदाचार पर्यायवाची शब्द हैं। Character is the transcription of knowledge into action. शुद्ध ज्ञान जब सक्रिय होता है तब सच्चरित्रता का उदय होता है।

महाप्रभु चैतन्य ने निर्देश किया है कि तृण से भी तुच्छ बन कर, वृक्ष के समान सहनशील होकर, स्वयं माना रहित होकर दूसरों को सम्मान देना ही चरित्र का उत्कृष्ट लक्षण है। स्वाभिमानता का उपदेश देते हुए माघ कवि कहते हैं "अपमानित जीवन से धूलि ही श्रेष्ठ है जो पैर की ठोकर से ऊपर उठती है।" संसार के सभी आभूषण तुच्छ हैं। केवल वाणी ही सच्चा आभूषण है। फलतः चरित्र निर्माण हेतु सत्य-प्रिय, मधुरभाषी बनना श्रेयस्कर है। No legacy is so rich as honesty, ईमानदारी के सदृशय कुछ भी बहुमूल्य नहीं है।

कबिरा सोई पीर है जो जाने पर पीर,
जो पर पीर न जानई सो काफिर बे पीर।

जोशिया लिट्ल पिकार्ड नामक एक अमेरिकन शिक्षक ने (जन्म १८२४) लिखा था कि यह बड़ी घातक भूल होगी कि यदि हम यह सोचें कि बिना धार्मिकता के चरित्र बन सकता है। चरित्र निर्माण के लिए अनिवार्य तत्व हैं धर्म, नैतिकता तथा ज्ञान। पिकार्ड के समकालीन थे अमेरिकन अंग्रेजी अध्यापक आस्टिन फेल्यूस। उन्होंने लिखा है कि ईश्वर ने मानव की रचना इसलिए की कि वह महान् चरित्रवान बने। प्रसिद्ध लेखक इमर्सन के अनुसार चरित्र बुद्धि से कहीं अधिक महान् है। अमेरिकन पादरी वॉर्ड बीचर (१८८७) ने बड़े महत्व की बात कही है। "कोई व्यक्ति जीवन भर सफल हो सकता है, पर मरने के समय वह बिल्कुल खोखला तथा निकम्मा होगा। एक जीवन भर असफल और पराजित हो सकता है पर मरने के समय वह अपने अन्तर में साम्राज्य का स्वामी होगा। मनुष्य की सम्पत्ति, वैभव, शक्ति, उसके भवन, धन, समाज में आदर के पद में नहीं है, यह वास्तव में उसके भीतर हैं जो उसका तात्विक चरित्र है। यदि उसे अच्छा पुरुष बनना है तो वह अपने भीतर उत्तम चरित्र का राजा बने।

आस्टंन ओ मेली ने लिखा था कि अच्छा चरित्र एक फूटबॉल की तरह है। जितना ऊँचा फेंको जमीन पर गिर कर उतना ही ऊपर उछलेगा, पर लौकिक मान मर्यादा एक अण्डे की तरह है। उसे जितना ऊपर फेंको जमीन पर गिरते ही नष्ट हो जाता है।

राष्ट्रपति रूजवेल्ट की पत्नी ने कहा था कि चरित्र निर्माण जन्म से शुरू होकर मृत्यु तक

होता रहता है। जेफरसेन डेविस के अनुसार यदि शुरू जवानी में ही सत्य को अपने चरित्र का आधार नहीं बना दिया गया तो मानव के चरित्र में सदा कमजोरी रहेगी। थियोडोर उजले ने (१८०२-१८८९) लिखा है कि यह संसार धन से नहीं चरित्र से शासित होता है। नैतिकता और बुद्धिमत्ता दोनों मिलकर संसार का उज्ज्वलतम चरित्र बनाती हैं। श्रेष्ठ और सफल शासन का अर्थ सम्पत्ति और मनुष्य-गणना की वृद्धि नहीं, वरन् चरित्रबल और व्यक्ति निर्माण है।

मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम, त्याग, बलिदान और भ्रातृ प्रेम के प्रतीक भरत, सेवा और प्रीति के अनन्य आदर्श हनुमान, आदर्श गुरु रामकृष्ण देव एवं युगाचार्य स्वामी विवेकानन्द का चरित्र हमारे लिए प्रेरणा के चिरस्थायी स्रोत हैं। उनकी चारित्रिक विशेषताओं पर आज मानव जाति को गर्व है। लोकमान्य तिलक, महामना मालवीय जी तथा राष्ट्रपिता बापू अपने चारित्रिक सौन्दर्य के कारण ही आज भारतीय जनता के अग्रणी बने हुए हैं। सीता, सावित्री, गार्गी, मैत्रेयी, दमयन्ती, मीरा और माँ सारदा, आदि स्त्री रत्नों के उदात्त चरित्रों से भारतीय इतिहास जगमगा रहा है। आज भारत में चारित्रिक मूल्यों में जो गिरावट आयी है उसे देखते हुए हमें चरित्र निर्माण की दिशा में सक्रिय भूमिका निभानी ही होगी।

□

PRABUDDHA BHARATA

(AN ENGLISH MONTHLY OF THE RAMAKRISHNA ORDER)

5 DEHI ENTALLY ROAD, CALCUTTA-700 014

The magazine was started by **Swami Vivekanand** in 1896 after his triumphal tour of the West. Its Very name, AWAKENED INDIA, imparts the message of Swamiji regarding the restoration of Indian glory in the eyes of the World.

In its more than 90 years of existence, the magazine has travelled far and wide containing choicest articles on philosphy, religion, arts, contemporary issues etc.

Interested readers are requested to send Rs 30/- (for one year) or, Rs. 500/- (for Life) by M.O./Demand Draft drawn in favour of 'Prabuddha Bharata' along with the full address written in Capital letters. The January issue will be a special issue. Please make an early remittance to avoid disappointment.

स्वामी अद्भुतानन्द की जीवन-कथा

—चन्द्रशेखर चट्टोपाध्याय

अनुवादक—स्वामी विदेहात्मानन्द

श्यामपुकुर में साधक-लाटू के जीवन की एक घटना है। "उस दिन भावावेश में वे अपने शरीर का कपड़ा फाड़ रहे थे। उनकी वह अवस्था देखकर ठाकुर ने शीघ्रतापूर्वक उनके कुरते का बटन खोल दिया और उनकी छाती सहलाने लगे। कुछ देर बाद लाटू का भाव शान्त हुआ।" उपर्युक्त बातें हमने भक्त श्रीयुत मणीन्द्रनाथ गुप्त से सुनी हैं; जो उस दिन वहाँ उपस्थित थे।

वार्तालाप के दौरान एक दिन साधक-लाटू ने सुना —"काजल की कोठरी (अर्थात् संसार) में रहने पर चाहे कोई कितना भी बुद्धिमान क्यों न हो, थोड़ी-बहुत कालिख तो लग ही जाती है।" यह बात सुनकर उनके मन में संसारत्याग की इच्छा जागने लगी। ठाकुर उनके मन की बात समझ गये और बोले —"अरे, रामचन्द्र को जब वैराग्य हुआ तो दशरथ बड़े चिन्तित होकर वशिष्ठ देव की शरण में गये -ताकि राम संसारत्याग न करें। वशिष्ठ ने रामचन्द्र के पास जाकर देखा कि वे अन्यमनस्क बैठे हैं, उनके अन्तर में तीव्र वैराग्य है। वशिष्ठ बोले —'राम! तुम संसार क्यों त्यागोगे? संसार क्या उनसे अलग है? मेरे साथ विचार करो।' राम ने देखा कि संसार भी उसी परब्रह्म से हुआ है, इसीलिए वे मौन रह गये।" तदुपरान्त वे कहने लगे —"ढाई को छूकर संसार के खेल में लगे रहना। तुम लोगों को भय कैसा? तुम लोग कोई ऐरे-गैरे थोड़े ही हो! जगत्-कारण को जानकर तुम लोग जगत् में रहना, तुम्हारे शरीर पर भला कालिख कैसे लगेगी?" (श्रीम कथित)

"जानते हो इन लड़कों से इतना स्नेह क्यों करता हूँ? ये लोग बड़े अच्छे आधार हैं, भगवत्प्राप्ति के लिए इनके हृदय में व्याकुलता का उदय हुआ है। ये लोग बिलकुल बेदाग लाई हैं। लाई जब भूना जाता है तो उसमें से दो-चार टप-टप करके छिटक कर बाहर आ पड़ते हैं। वे मानो मल्लिका के फूल के समान रहते हैं। उन पर जरा सा भी दाग नहीं रहता। इनका भी वैसे ही है। इन लोगों ने बचपन से ही मन को बेकार की चीजों में खर्च नहीं होने दिया है।" (ठाकुर ने जिन युवकों के सम्बन्ध में ये बातें 'म' से कही थीं, उनमें लाटू महाराज भी एक थे।)

"श्यामपुकुर के मकान में ठाकुर करीब तीन महीने रहे। वहाँ हम लोगों को खाने पहनने का कोई कष्ट नहीं था। वहाँ जितने भक्त आते, वे लोग साथ में डलिया भर भर कर खाने की चीजें ले आते थे। कई बार तो वे वह सब खाना गरीब-दुखियों में बाँट देने को कहते। उन दिनों में अधिक कुछ खा नहीं पाते थे, सुबह केवल भात का माँड़ और शाम को थोड़ी सी सूजी की खीर। माताजी अपने ही हाथों वह सब तैयार कर देती थी।" (लाटू महाराज कथित)

(क्रमशः)